और धनेसरी आजाद हो गई

धनेसरी ने तो सोच ही लिया था कि उसकी जिन्दगी गाँव की वह नदी नहीं ही रह गई है, जिसमें कभी वह घंटों डुबकी लगाया करती थी, छोटी-छोटी चिड़ियों की तरह और यह सोचा करती थी कि वह उस नदी से कम नहीं है। वैसी ही खिलखिलाहट पायी है उसने भी और वैसे ही फुदकते हुए लगाता भागते रहना। अब धनेसरी यह खूब समझती है कि उसका जीवन उस भुतहा पहाड़ की तरह बन गया है, जो उसके गाँव की मुर्दघट्टी के पीछे में था और जिसके बारे में तरह-तरह की कथाएँ प्रचलित थीं कि वहाँ डायन-जोगिन-भूतिन रात में नहीं, दिन में भी नंगी होकर श्मशान जगाती हैं। वहाँ दिल दहला देनेवाली उनकी आवाजें होती रहती हैं। धनेसरी अपने को पहचानने की कोशिश जब भी करती है, अपने को समझने की कोशिश जब भी करती है तो वह अपने को इस पहाड़ से ज्यादा भयावह देखती है।

धनेसरी उस पहाड़ के बारे में याद करती है, अपने गाँव की मुर्दघट्टी के उस पहाड़ को जिसके बारे में यह भी कथा प्रचलित है कि वह पहाड़ वैसा था नहीं। बहुत खूबसूरत पहाड़ था वह, सफेद पत्थरों से ढका हुआ वह पहाड़। एक बार वहाँ कोई एक योगी आया, जो बहुत अच्छा बांसुरी बजाने वाला था और बांसुरी की धुन पर पहाड़ की चोटियाँ झूमने लगीं। इतनी झूमी कि उस योगी के वश में हो गई और फिर एक दिन उस योगी ने अपने काले जादू से उस पहाड़ को काला कर दिया, अपनी तरह। कहते हैं कि वह योगी अब भी एक पत्थर के शक्ल में बैठा, पूरे पहाड़ को अपने इशारे पर चलाया करता है। कभी-कभी तो रात-रात भर पहाड़ रोता है।

धनेसरी तब सचमुच में उसी सफेद पत्थरों की पहाड़ी जैसी दमकती थी। खुशी की कोई हल्की-सी किरण पड़ी नहीं कि उसके आसपास एकदम उजाला फैल जाता था। उसे इस तरह चहकते-खिलखिलाते देख, माँ कभी अपनी गोद में छिपा लेती। अपनी आँखों के काजल से उकसे चेहरे को कहीं से काला कर देती और फिर उसे थुकथुका भी देती थी, कहीं किसी की बुरी नजर न लग जाए।

धनेसरी को ख्याल आता है अपना वह दिन, जब वह चौदह वर्ष की रही होगी। चौदह वर्ष से ज्यादा नहीं, कम की होगी तो होगी, जबकि उसकी जिन्दगी में वह जादूगर आया था। हाँ जादूगर ही था, लगता था योगी। बैलगाड़ी हाँकता था और एक दिन उसी गाँव में बस गया था वह योगी, काफी मेहनत-मशक्कत करने वाला। कितनी अच्छी बांसुरी बजा लेता था वह और उसकी इसी कला ने उसे सबका बना दिया था। मेरे घर तक भी पहुँच हो गई थी उसकी बांसुरी की आवाज की। मुझमें जाने कैसी बेचैनी भरने लगी थी कि पर्वत की पहाड़ी नदी के बीच उछलने-कूदने की वह आदत ही जाती रही थी। कानों में बस वही बांसुरी की गूंज और आँखों में बस उसी जादूगर की सूरत। माँ ने शायद मेरी हालत को समझ लिया था। क्यों नहीं समझती, आखिर माँ जो ठहरी और न जाने कब माँ ने उस जादूगर से मेरे रिश्ते की बात भी पक्की कर ली थी और मैं उसकी हो गई थी। डोली पर चढ़कर, हाथ पर घूंघट नीचे किए, लाज से एकदम दोहरी हुई चुपचाप चली आयी थी उस जादूगर के देश में जहाँ कुछ भी उजाला नहीं था, अंधकार था, काले जादू का अंधकार। उस दिन धनेसरी ने पहली बार अपने जादूगर पति के उस काले देश को अपनी खुली-खुली आँखों से देखा था, कहीं कोई हास-चमक नहीं थी। कहीं कोई रोशनदान भी नहीं, बस एक पतली सुरंग-सा द्वार, जहाँ से जिन्दगी भीतर तो जा सकती थी, लेकिन वहाँ से किसी जीवन का बाहर निकलना मुश्किल था। यह काला देश उसका ससुराल था और जादूगर योगी उसका ही पति।

शुरू-शुरू में तो सबकुछ ठीक-ठाक ही चलता रहा था। धनेसरी का पति बिसेसर, अब बैलगाड़ी हाँकने की जगह ठेला खींचने लगा था। शहर में ठेले से कमाई अच्छी हो जाती है। दो ट्रिप लगाया कि पचास-साठ रूपए तुरंत हासिल। बिसेसर सारी रकम धनेसरी के हाथ में आकर रख दिया करता था और सबकुछ से निश्ंचित हो जाया करता था। साल भर तो ठीकठाक ही चला था। धनेसरी को घर के दरवाजे से बाहर निकलना नहीं था। लेकिन साल भर के बाद उसका पुराना हो जाना तो स्वाभाविक ही था। शहर की जिस झोपड़पट्टी में धनेसरी आयी थी, वहाँ कोई भी लड़की जब ब्याह कर लायी जाती, तो महीने भर के बाद ही आम हो जाती। आम होने का मतलब यह था कि वह किसी के भी घर आ-जा सकती थी, किसी भी काम के लिए बेरोक-टोक ढंग से। और किसी जवान-बूढ़े मर्द से वह बातें कर सकती थी। इसका एक कारण था कि उस झोपड़पट्टी की सारी स्त्रियाँ और मर्द काम करने वाले होते थे। औरतें किसी के घर में बर्तन माँजती, किसी के बच्चे खेलाती, किसी की छोटी-मोटी दुकानें भी चलातीं, तो मर्द दिन भर मूंगफली बेचने से लेकर ठेल खींचने और माथे पर माल ढोने का काम किया करते।

लेकिन इतने महीने घर में बंद रहने के बाद भी धनेसरी को आम नहीं होने दिया गया। यह बात सबसे ज्यादा धनेसरी को ही खलती थी। गाँव में जब वह थी तो वह पहाड़ी नदी और हवा की तरह मुक्त थी, कोई बंधन नहीं और यहाँ आकर तो वह एकदम गुलाम हो गई थी। इस अहसास उसे साल भर के बाद और भी तेजी से होने लगा था और एक दिन बिसेसर जब घर लौटा था और उसके हाथों में रुपए डाल, सब बातों से निःफिकर होना चाहता था, तभी धनेसरी ने बड़े प्यार से यह सवाल उसके सामने रख दिया कि तुम मुझे बाहर क्यों नहीं निकलने देते? यहाँ लाकर तो तुमने मुझे कैदी बना दिया है।

धनेसरी ने जितने प्यार से यह बात कही थी, ठीक उतनी ही घृणा और आक्रोश में बिसेसर ने, एक क्षण कुछ सोचने के बाद, कहा था- "कहाँ जायेगी? क्या हमसे जी नहीं भरता, जो बाहर जाया करेगी? खबरदार, जो फिर कभी बाहर जाने की बात कही। कपड़ा से लेकर पेट तक पालता हूँ और मैं तुम्हारे साथ हूँ ही, औरत को जो चाहिए, वह सबकुछ तुम्हें दे रहा हूँ, कभी बाहर जाने की बात फिर बोली तो सच कहता हूँ- जीभ काट लूँगा।"

उस दिन धनेसरी को सबकुछ पता चल गया था और अब वह अपने पति के सूने में खूब फूट-फूटकर रोयाा करती, ठीक उसके गाँव की उस पहाड़ी की तरह, जिसके बारे में यह कथा प्रचलित थी कि काले जादूगर के फेरे में पड़कर वह कभी-कभी रातभर रोया करता है। धनेसरी तो रात-रात भर रो भी नहीं सकती, क्योंकि रात के ठीक आठ-नौ बजते उसका पति आ जाता और फिर शुरू हो जाता था एक नये ढंग का कुहराम, जो कुहराम उस झोपड़-पट्टीवाले के लिए भी नया था। धनेसरी ने जब तक मुँह नहीं खोला था, तब तक सब ठीकठाक था, लेकिन उसकी एक बात ने उसकी जिन्दगी में एक अजीब-सा हलचल भर दिया था, या फिर उसकी एक बात ने बिसेसर के रूप को ही खोलकर रख दिया था।

उस दिन के बाद से ही सचमुच में बिसेसर पहले जैसा बिसेसर न रहा था। धनेसरी ने महसूस किया था कि पहले कुछ दिनों में जब वह घर लौटता तो उसके चेहरे पर घृणा और आक्रोश में कमी नहीं होती, लेकिन वह भी भयभीत न होने वाली थी। उसने भी तीसरे या चौथे दिन ही अपने पति से कहा था- "इस तरह चेहरा बनाकर आने का मतलब? यह कभी नहीं सोचना कि मैं तुम्हारी गुलाम बनकर तुम्हारा घर सेवने आयी हूँ। जैसे आज तक रही हूँ, वैसी ही रहूँगी। अब तुम्हारी कोठरी का यह अंधेरा मुझे खाने लगा है। मुझे धूप और हवा चाहिए, जो तुम नहीं दे सकते। तुम मुझे मेरे गाँव पहुँचा दो।"

इस बात पर तो बिसेसर का क्रोध ज्वालामुखी की तरह फूट पड़ा था। उस

दिन तो कुछ नहीं बोला था, लेकिन दूसरे या तीसरे दिन के बाद से ही वह सस्ती किस्म की शराब चढ़ाकर घर लौटा था, काफी अनाप-शनाप बकता हुआ। उस झोपड़पट्टी में शराब पीकर आना और फिर भद्दी गालियों से जिस-तिसको सराबोर कर देना, आम बात थी और फिर अपने बेटे या फिर स्त्री को पीटना, पीटते चले जाना तो और भी आम बात थी। इस बात से झोपड़पट्टी के लोग कुछ भी प्रभावित नहीं होते थे, हाँ आसपास के कुछ पढ़े-लिखे लोगों को अवश्य परेशानियाँ उठानी पड़ती थीं और उस रात जब बिसेसर मुँह से दुर्गन्ध निकालता घर पहुँचा था तो धनेसरी की तो जान ही निकल गई थी। आते ही उसने धनेसरी से खाना माँगा था, पर वह खाना देती कहाँ से? आज सुबह से बिसेसर किसी कलाली में बैठकर सस्ती स्प्रिटवाली शराब को गले से नीचे उतारता रहा था। कमाई नहीं की थी, सो घर में चूल्हे पर हाँडी कैसे चढ़ती। बिसेसर ने खाना माँगा तो धनेसरी ने उसी ताव में कहा- "पेट तो भर लाये हो दारू से, अब क्या कलेजे में भोजन अटाओगे। यहाँ जिसकी अंतड़ी जल रही है, उसकी तो तुम्हें चिंता है नहीं। अगर अपना ही ठौर-ठिकाना नहीं था, तो मुझे क्यों माथे पर ढो-ढोकर ले आये थे।"

बिसेसर को किसी भी तरह उसकी यह बात बर्दाश्त नहीं हुई थी और जी भर के पीटा था उसे, उस दिन। धनेसरी चीख-चीखकर रोयी थी। झोपड़पट्टी का कोई भी व्यक्ति उसे बचाने नहीं आया था, एक औरत भी नहीं। आखिर क्यों कोई आती उसे बचाने के लिए, वहाँ तो जब कोई औरत पीटी जाती, तो दूसरी औरत इसी बात से सहमती रहती कि देखा-देखी उसका पति भी उसे पीटना न शुरू कर दे। बेवजह। एक आनन्द के लिए। पुरुषार्थ का प्रदर्शन करने के निमित्त।

और ठीक दूसरे ही दिन धनेसरी ने एक बहुत बड़ा निर्णय ले लिया था- बगल के एक वकील साहब के यहाँ बर्तन-बासन माँजने का निर्णय। और वह दूसरे ही दिन चुपचाप सुबह चली गई थी, उस वकील साहब के यहाँ। उसने सारी बातें बताई थीं वकील साहब से और डेढ़ सौ रुपए और खाने-कपड़े पर उसकी व्यवस्था हो गई थी। बिसेसर ने तो इसकी कल्पना भी नहीं की थी कि यह सबकुछ हो जायेगा। वह बचपन से इस मुहल्ले में रह रहा है, वह सबकुछ जानता है। वह झोपड़पट्टी में बचपन से ही बहुत कुछ देखता आ रहा है, फिर उसे तो इस पढुवा लोगों पर एकदम विश्वास नहीं है। लाज-विज कुछ नहीं। भाई-बहन भी सांय-बहु की तरह बतियाते हैं। और उसी घर में धनेसरी काम करने चली गई-बिसेसर का तो सारा तन-बदन आग से जल उठा। वह बारह बजे से घर में आकर बैठा था। आज वह सारी दुर्गत पुरा के रख छोड़ेगा। और जब धनेसरी काम से लौटी थी तो सचमुच में उसने उसकी बारहो गत पुरा दी थी। उसे कमरे में बंद कर दिया था और स्वयं दरवाजे के बाहर खाट

लगाकर सो गया था।

दूसरे दिन सुबह सात बजे उठा था बिसेसर और उठते ही उसने दरवाजे पर कान लगा दिया था- यह टोह लेने के लिए धनेसरी जगी है या अब तक सो रही है। लेकिन वह अब तक रो रही थी। कपसने और सिसकने की आवाजें साफ-साफ सुनाई पड़ रही थीं। बिसेसर चुपके से दबे कदम लौट आया और खाट पर बैठ गया। अब तक लुंगी के एक छोर में बंधी खैनी की पुड़िया को निकाला और फिर अपनी तलहत्थी पर दो-तीन बार रगड़ देकर उसने अपने निचले दांतों के तले रख दी।

कल से ही बिसेसर भूखा था। शराब ने उसकी अंतड़ियों में एक अजीब किस्म की जलन पैदा कर रखी थी। खैनी को होठों के नीचे रखा तो अचानक उसका सर चकरा गया। उसे लगा जैसे वह चक्कर खाकर गिर जायेगा। उसने तेजी से मुँह की खैनी एक ओर थूक दी और मुँह में कुछ डालने की बात सोचने लगा। लेकिन घर में कुछ था तो नहीं। परसों भी उसने ठेला नहीं चलाया था और कल तो उसने बचाये हुए सारे पैसों को दारू में ही खत्म कर दिया था। आज तो एक दाने के लिए भी, एक फूटी कौड़ी नहीं बची थी। और झोपड़पट्टी में कोई कुछ देने वाला नहीं था। भूख सचमुच में इस कदर समय के साथ बढ़ती जा रही थी कि बिसेसर एकदम परेशान हो उठा। उसने अपनी दोनों हथेलियों से लगातार पेट को मलना शुरू किया, लेकिन भूख थी कि जैसे और जलने लगी थी...। उसे लगा कि व्यर्थ ही उसने ध ानेसरी को कमरे में बंद कर रखा है। अच्छा तो है कि वकील साहब के यहाँ नौकरी लग गई है। काम करेगी तो उसका भी पेट भर जायेगा और मेरे लिए भी कुछ-न-कुछ व्यवस्था हो ही जायेगी। किसी दिन ठेला न भी चलाया तो कुछ बात नहीं। आखिर कल उसने मेरे लिए कुछ लाया भी था, अपने हिस्से का ही सही। गलती मेरी ही थी कि गुस्से में उठाकर फेंक दिया था। पेट में चला गया होता तो इस कदर भूख से जलना नहीं होता...। सचमुच में, मैं बहुत कसाई हूँ, अपने तो भूखे मर ही रहा हूँ, गौ जैसी सीधी-सादी अपनी पत्नी को भी भूख से मार रहा हूँ। मैं भी कितना पापी हूँ, जो इतने अच्छे लक्षण वाली अपनी जनानी को शंका की निगाह से देखने लगा। अरे उसे कुछ ऐसा-वैसा करना होता, तो अपने मायके में नहीं कर बैठती। तब तो वह बिगड़ी नहीं, जब उस पर कोई बंधन नहीं था। भला अब क्यों वह बिगड़ने जायेगी, जब उसका पति उसके साथ है। सचमुच में मैंने इसके साथ बहुत बड़ा अपराध किया है। ईश्वर मुझे माफ नहीं करेगा। यमदूत मुझे नरक में गिरा-गिराकर मारेगा। मैंने अपनी जनानी को रात-रात भर भूखा रहा है, उसके चरित्र पर शंका की है...इतना सोचने के साथ ही बिसेसर स्प्रिंग के पुतले की तरह खाट से उठ बैठा और दरवाजा खोलते हुए कमरे के भीतर घुस गया था।

धनेसरी अब भी भीतर चुकुमुकु बैठी कपस रही थी। बिसेसर उसके पैरों के करीब जा बैठा और बड़े प्यार से उसकी पीठ को सहलाते हुए रूक-रूककर कहने लगा- "धनेसरी, मैंने सचमुच में तुम्हारे साथ बहुत बड़ा अन्याय किया है, तुम्हें गलत समझा। तुम्हें बाहर नहीं निकलने दिया, तुम्हारे मन को तोड़ा। सचमुच में, मैं बहुत पापी हूँ। मैं तो सचमुच में भाग्यवान हूँ कि मुझे तुम्हारी जैसी जनानी मिली है- कुलवन्ती, सुलक्षणवाली। और जब तुम ऐसी हो, तो कौन तुम पर बुरी निगाह डाल सकता है? गैरों की बात छोड़ दो, यह काली वरदी चढ़ाने वाला वकील भी कुछ नहीं कर सकता। तुम अवश्य ही उसके यहाँ जा सकती हो। मैं मना भी नहीं करूँगा। काम करोगी तो बाहर भी आना-जाना हो जायेगा, मन भी बहल जायेगा और घर की खर्ची भी निकल जायेगी। है की नहीं धनेसरी? तुम्हें किसी तरह भी नहीं डरना है। अगर उस काली वरदीवाले ने कभी बुरी आँखें उठाई भी, तो मैं उसकी आँखें फोड़ दूँगा? हाँ, और फिर इस मामले में क्या तुम्हीं कम हो, जंगली इलाके में पली-बढ़ी हो, कभी जंगलों का भय नहीं लगा, तो ये शहरी भालू-भेड़िए क्या कर लेंगे? तुम्हारे एक ही झापड़ से इनके जबड़े उखड़ जायेंगे।"

धनेसरी, जो बहुत देर से बिसेसर की बातों को अपनी सिसकियाँ बन्द करके सुन रही थी, अचानक ही अकबका कर तन गई और अपने चेहरे पर एक अनजाना-सा विश्वास लाती हुई कहने लगी- "ठीक ही कहते हो तुम। जब मैं अपने चरित्र से मजबूत हूँ, तो किसकी क्या हिम्मत, जो मेरी तरफ आँख भी उठाये या अपना पंजा भी बढ़ाए। एक थाप में ही उसके जबड़े तोड़ दूँगी।"

और धनेसरी ने इस्पात बनते दाँये पंजे को अपने पति के बाँये गाल पर कसकर जड़ दिया था। बिसेसर को लगा था, उसके जबड़े ही नहीं, बल्कि जबड़े का एक-एक दांत उखड़कर बाहर छिलक गया हो। उसने अपनी दोनों तलहत्थियों से कसकर अपने दोनों गालों को पकड़ लिया था। उसका सारा शरीर फर्श पर गिरे कांसे के बर्तन की तरह झनझनाने लगा था और धनेसरी यह कहती हुई बाहर निकल गई थी- "तुम्हें हम पर विश्वास करना चाहिए कि हमारे तन और मन को हमारे खिलाफ होकर कोई भी नहीं छू सकता, वकील तो वकील, तुम भी नहीं।"

भय

कावेरी अब बच्ची नहीं रही थी। सोलह की नहीं हुई थी, लेकिन सोलह को छूने पर तो हो ही गई थी। उम्र चाहे कुछ भी हो, लेकिन कावेरी के व्यवहार में अब भी अब भी वही बचपना था, जिससे वह तेरह-चौदह साल की उम्र से ज्यादा नहीं लगती थी और पिता के सामने तो उसका बचपना और भी ज्यादा बढ़ जाता था कि कावेरी की माँ को भी कभी-कभी टोक देना पड़ता था- "तुम बच्ची की तरह क्यों करती रहती हो?" और फिर अपने पति जयकान्त बाबू से भी कह बैठती- "आप भी तो बच्चे के साथ बच्चे ही बन जाते हैं। कावेरी को अब थोड़ा गंभीर होने दीजिए। लड़की जात है न!"

जब इन्हीं वाक्यों को माँ ने एक दिन नहीं, बीच-बीच में कई दिनों तक दोहराया था, तब कावेरी भी एकाएक ही युवती बन गई थी, गंभीर बन गई थी, खामोश हो गई थी। लेकिन जयकान्त बाबू के व्यवहार में कोई अन्तर नहीं आया था। वह अपनी बेटी के साथ वैसा ही व्यवहार करते। लेकिन उन्हें दुःख तब होता, जब वैसा ही व्यवहार अब बेटी की ओर से नहीं मिलता था। जयकान्त बाबू कुछ बोलते नहीं थे, लेकिन वह भीतर से टूटकर बिखर तो जरूर ही जाते थे।

कावेरी जब से युवती बन गई थी, तब से उसके व्यवहारों में भी भारी परिवर्तन दिखने लगा था। पिता के सामने तो क्या, वह माँ के सामने भी बच्चे का-सा धूम-धड़ाका नहीं मचाती थी। माँ जो कुछ कहती थी, वह अब उसका प्रतिवाद भी नहीं करती। चुपचाप वह सबकुछ कर दिया करती, जो माँ कहती, पिता तो खैर पहले भी कुछ नहीं कहा करते थे और अब तो भूले से ही कुछ कह देते तो अलग बात थी। माँ बहुत खुश थी कि कावेरी अब सयानी लड़की बन गई है।

सयानी लड़की बनने के बाद से ही कावेरी ने खुद को भी पहचानना-जानना शुरू कर दिया था। माँ बरबस कहा करती- "देख बेटी, अब तुझे मैं न भी समझाऊँ,

तो भी तुम सबकुछ समझ रही होगा। अब तुम कोई बच्ची तो रही नहीं। कल न परसों से तुम्हारे लिए भी घर ढूंढना पड़ेगा ही और आजकल तो घर-वर की तलाश का अर्थ है- जूते के साथ पाँवों तक का घिस जाना। दहेज-उहेज तक की तो बात अलग है। सबसे पहले वर-पक्षवाले पूछेंगे- लड़की पढ़ी-लिखी है कि नहीं? पढ़ी-लिखी है तो फिर कहाँ तक है? अब पढ़ी-लिखी होने तक की ही बातें नहीं हैं अब तो लड़की को जो देखने आते हैं, दुनिया भर की बातें उससे पूछते हैं, अमेरिका के राष्ट्रपति कौन हैं? तो ब्रिटेन की महारानी कौन है? कब हिमालय हिला? तो कब उस नेता का सिंहासन गिरा? उसे अब तो किताब भी पढ़ने की जरूरत नहीं। अखबार पढ़ना ही बहुत जरूरी है। अखबारों से ही दुनिया भर की बातें चार रोज में तुम जान जाओगी और लोग तो कहते हैं कि नौकरी-चाकरी का परीक्षा में इन्हीं अखबारों की बातों को पूछा जाता है। तुम्हें घर के कामों के लिए समय न मिले तो न सही, लेकिन अखबार पढ़ने का समय जरूर निकाल लिया कर बेटी।"

और माँ के बहुत समझाने-बुझाने पर कावेरी ने भी इसे स्वीकार कर लिया था। घर में जयकान्त बाबू के लिए जो अखबार आता था, अब उसे पहले कावेरी ही पढ़ती थी। जयकान्त बाबू को यह बात बड़ी अच्छी लगती। अब वह स्वयं अखबार भी नहीं पढ़ते। ऑफिस से थक कर आते तो कावेरी को ही अखबार पढ़ने के लिए कह देते, आप चुपचाप बैठकर सुनते रहते। बीच में बस हाँ-हूँ भर कर दिया करते।

जयकान्त बाबू जब स्वयं अखबार पढ़ा करते थे तक शीर्षक भर को ही पढ़ते और शीर्षकों में भी बस उन्हें ही, जो मोटे अक्षरों में छपे होते, लेकिन जब से कावेरी ने अखबार पढ़कर सुनाना शुरू किया था, तब से वह किसी समाचार को आखिर तक ही सुनना पसंद करते थे।

उस दिन कावेरी जब एक शीर्षक को पढ़ते-पढ़ते हठात् रुक गई, तो जयकान्त बाबू को भी आश्चर्य हुआ था। पूछ बैठे- "रुक क्यों गई?" खबर का शीर्षक ही कुछ ऐसा था कि कावेरी को रुक जाना पड़ा था। वह अगर बहुत कोशिश करती भी तो उसे पढ़ना, उससे किसी तरह भी संभव न था।

जयकान्त बाबू समझ गए, जरूर कोई ऐसी खबर प्रकाशित है, जो बलात्कार की है अथवा जघन्य अपराध की या नृशंस हत्या की। जयकान्त बाबू जितने आधुनिक नहीं थे, उससे ज्यादा आधुनिक दिखना पसंद करते थे। घर में बच्चों के साथ भी। शायद यही कारण था कि उन्होंने कावेरी से उस खबर को पढ़ने की जिद करते हुए कहा- "अरे रुक क्यों गई? खबर क्या हत्या की है? लूट की है? या किसी गुण्डों द्वारा किसी लड़की के मुँह काला करने की बात है?" लेकिन कावेरी उसे नहीं पढ़

सकी और तब जयकान्त बाबू ने हँसते हुए दूसरे समाचार को पढ़ने के लिए कहा था, लेकिन इसके बाद कावेरी ने जितने भी समाचार पढ़े थे, वह कुछ-कुछ इस कदर से कि जयकान्त बाबू को यह समझते देर न लगी थ कि कावेरी का अब उसके पास बैठे रहना भी मुश्किल हो रहा है। इसी से उन्होंने एक दूसरा बहाना बनाते हुए कहा था- "जाओ, जरा माँ के काम में हाथ बंटा दो, वरना चौके से अभी चिल्लाएगी कि अपने तो अखबार के पीछे बरबाद रहते ही हैं अब बेटी को भी बरबाद करने पर तुले हैं।"

जयकान्त बाबू अपने वाक्य को अभी और आगे बढ़ाते कि उसके पहले ही कावेरी उठकर चौके की तरफ चली गई थी और उस दिन के बाद से ही उसने पिताजी के समक्ष कभी भी अखबार को नहीं पढ़ा, चाहे पिताजी ने घण्टे भर में पचास बार ही क्यों न कहा हो। जयकान्त बाबू जब भी अखबार पढ़ने की बात कहते, कावेरी कोई-न-कोई बहाना ढूंढ ही लेती- कि दूध उबल कर गिर जायेगा, चावल खौल रहे हैं, मसाला पीसना बाकी रह गया है, माँ के गीले कपड़े पड़े हैं, सूखने देना है। और जब लगातार बहानों का सिलसिला बनता रहा तो जयकान् बाबू ने भी कावेरी से ध ीरे-धीरे अखबार पढ़ने की बात कहना ही बंद कर दिया और स्वयं मोटे फ्रेम के चश्मा को अपनी आँखों पर चढ़ाकर पहले की तरह मोटे अक्षरों में छपे समाचारों को ही पढ़ने का अभ्यास बना लिया।

❖❖❖

जेठ का महीना काफी तपने लगा था। गरम हवा के कारण देह ही लसलस नहीं कर रही थी, बल्कि मन भी लसलसा गया था। लू से तो आदमी ही नहीं परेशान थे, जैसे रात को भी रात में चैन नहीं। लेकिन शादी-विवाह को कौन रोके। जितनी गरमी तेज थी, विवाह-शादी की तैयारियां भी उतनी ही तेज थी। जैसे एक घर के पीछे दूसरे घर में विवाह की तैयारी चल रही हो। अगर विवाह की तैयारी नहीं चल रही थी तो वहाँ बातें तो जरूर चल रही थीं। और कुल मिलाकर सारा गाँव और टोला गनगना रहा था। वैसे भी जयकान्त बाबू का गाँव इतना छोटा था कि भले ही दो ही द्वार पर बारातें लगे, ढोल और तुतरू की आवाजें इस कदर चारों तरफ उठ रही थीं, जैसे हर टोले में एक-एक बारात आयी हो।

जयकान्त बाबू के यहाँ भी गाँव के शादी-विवाह का काफी असर देखा जा रहा था। जयकान्त बाबू तो नहीं, हाँ उनकी पत्नी नन्दिता पर इसके असर का जादू माथे पर चढ़कर जरूर बोल रहा था। कभी बक्से से इस साड़ी को निकालती तो कभी सन्दूक से धुली उस कीमती साड़ी को। जयकान्त बाबू ने एकबार होठों में मुस्कुराते हुए कह भी दिया था- "तुम तो इतनी सजने-धने की तैयारी में हो कि जैसे राधे पांडे

की बिटिया की शादी नहीं, तुम्हारी ही होने जा रही हो।"

लेकिन नन्दिता पर इस हास्य-व्यंग्य का कुछ असर नहीं पड़ा था। शायद बातों पर ही ध्यान नहीं दिया था। कावेरी चुपचाप थी। कभी एक कोने में बैठ जाती, तो कभी दूसरे कोने में। विवाह में कावेरी नहीं जाएगी- माँ ने हमेशा की तरह पहले ही कड़े शब्दों में कह दिया था। एक बार जयकान्त बाबू ने दबी जुबान में यह कहा भी था "क्यो?" तो नन्दिता ने वैसे ही स्वर में उत्तर देती हुई कहा था- "अब कावेर के कहीं आने-जाने की उम्र नहीं रही। विवाह-शादी में दस जगह से दस तरह के आदमी आते-जाते रहते हैं, इसीलिए।" और इस तरह कावेरी के जाने पर प्रतिबन्ध ा लग गया था। जयकान्त बाबू को तो खैर कहीं जाना ही नहीं था, लेकिन पत्नी को पहुँचाने तो जाना ही पड़ेगा। और जब जाना ही पड़ेगा, तो आने में कुछ देर भी हो ही जायेगी। घर में अकेली कावेरी ही रहेगी। तो क्या हुआ? ज्यादा से ज्यादा रात के आठ बजेंगे, वह भी अगर सरातीवालों ने बारात आने तक ठहर जाने के लिए ही कहा और फिर गाँव में डर है ही क्या।

जब नन्दिता पहन-ओढ़कर बाहर जाने के लिए तैयार हुई थी तब जयकान्त बाबू भी तैयार हो गये थे। कावेरी की तरफ मुड़ते हुए उन्होंने कहा था- "देखो बेटी, मैं द्वार पर बाहर से ताला लगा देता हूँ। वैसे तो डरने की कोई बात नहीं, लेकिन तुम्हें भय लगे तो कमरे में फाटक लगाकर भी रह सकती हो।"

और इतना कह जयकान्त बाबू अपनी पत्नी के साथ पछियारी टोला की तरफ बढ़ गए थे। माँ-पिता के बाहर निकलने भर की देर थी कि कावेरी रसोईघर जाकर लालटेन फिर जला ले आयी। वैसे तो अभी तक संझा का उजास बाकी ही था लेकिन ऐसे उजास को जाने में देर ही कितनी लगती है। ऊंगली पर सौ तक गिनों नहीं कि अंधियारा घिर आये। और फिर उजास बचा भी रहे तो ऐसे में पढ़ना-लिखना कठिन ही है। कावेरी ने जले हुए लालटेन को और इन्जोर कर उसको अपनी कोठरी के एक टेबुल पर रख दिया था और अपने बिछावन के सिरहाने के नीचे, पाँच रोज से रखे उस अखबार को निकाल लिया था फिर लालटेन को इन्जोर को थोड़ा और भी टेस करती हुई उस समाचार को पढ़ने लगी थी, जिसको वह माताजी के बराबर घर में रहने के कारण कभी न पढ़ पायी थी। पढ़ना तो चाहा था कई बार, लेकिन इस ख्याल से कि न जाने कब पिताजी आ जाएं। कभी भी आश्वस्त मन से उसे न पढ़ पायी थी। आज घर में न माँ थी और न पिताजी ही। इससे बेहतर समय और क्या हो सकता था। कावेरी ने आँखें गड़ागड़ा कर, एक-एक अक्षर पर रुकती हुई, समाचार को पढ़ना शुरू किया था। पर उसने जैसे ही शीर्षक को पढ़ा, उसका रोम-रोम न जाने किस भय से प्रकम्पित हो उठा। उसने अपने को संभाला था और शीर्षक

पर ऊंगली रखकर, बढ़ती हुई ऊंगली के सहारे खबर को पढ़ना शुरू किया था।

भागलपुर 28 नवम्बर, भागलपुर के एक थानान्तर्गत अपनी नौ वर्षीया पुत्री के साथ एक पिता द्वारा बलात्कार किया गया एवं पकड़े जाने के भय से पुत्री की हत्या कर उसे कुएं में डाल दिया। समाचार काफी विस्तार से दिया गया था, किन्तु समाचार के आखिर तक पहुँचते-पहुँचते कावेरी पसीने से एकदम नहा गई, ऐसा कभी नहीं हो सकता, उसने मन में सोचा कि कहीं वह कहानी तो नहीं पढ़ रही। उसने अखबार के पन्ने को उल्टा-पुल्टा कर देखा था। नहीं यह समाचार था, भागलपुर का ही समाचार था और वह भी एक प्रतिष्ठित अखबार में छपा हुआ समाचार झूठ भी तो नहीं हो सकता। परेशानी से चुहचुहा आए पसीने की बूंदें जब कावेरी की आँखों में लगातार घुसने लगीं तो उसने अपनी आँखों में एक तेजाबी जलन महसूस की और फिर अपने आँचल से चेहरे के पसीने को पोंछती हुई स्थिर होने की कोशिश करने लगी। न जाने किस भय के आतंक से आतंकित होती हुई कावेरी हड़बड़ाती हुई उठी थी और सटाक से कोठरी के दरवाजे को भीतर से बन्द कर लिया था और अपने बिछावन पर चित लेट गई थी। वह चित लेट भी नहीं पायी थी कि उसे लगा था, कोई आकर उसे अभी, उसी अवस्था में पकड़ ले सकता है। वह उठ बैठी थी। फिर अपने को संतुलित करने के ख्याल से खुद से कहा था- उसे इस तरह डरने की जरूरत नहीं, घर में एक बाबूजी के सिवा है ही कौन और बाबूजी के रहते डर कैसा कि तभी कावेरी के मन में अखबार की खबर चित्र बनकर छा गयी थी। आखिर पिता ने ही तो अपनी नाबालिग बेटी की...उसका मन कसैला जितना हुआ था, उससे कहीं ज्यादा उसकी आँखों में असुरक्षा का भाव उतर आया था। सहसा ही उसके दिमाग में एक दिन की घटना स्मृत हो आयी थी। ...वह उस दिन चौके में अकेले-अकेले ही रसोई तैयार कर रही थी कि माँ की तेज और गुस्सैल फुसफुसाहट उसके कानों से आ लगी थी। पिताजी कब घर आ गए थे और उसे पता न चला था और माँ पिताजी पर बरसने के अन्दाज में कहे चले जा रही थी...यह मत समझिये कि आप पी-खाकर घर आते हैं तो एक दिन बेटी को मालूम नहीं होगा। घर में चमड़ा या रबड़ जरेगा तो गन्ध तो सबको लगेगी ही...और फिर उसने सुना था, अपने पिताजी की भी एक तेज कड़क- भाषण बंद करोगी या फिर...इस घटना की याद आते ही कावेरी का पूरा बदन झुरझुरा गया था, उसे लगा जैसे वह बीच जंगल में आ घिरी हो। एक भयानक अन्धेरा, एक भयानक सन्नाटा। उसके दिमाग में भालू-चीते जैसी जानवरों की तस्वीरें उभरने लगीं, वो जंगली पशु अभी आएंगे और उसकी बोटी-बोटी बिखेर देंगे।

कि उसी समय आँगन के पारवाला द्वार खुला था। दरवाजे के खुलने की

आवाज सुनते ही कावेरी एक बार फिर पसीने से तर-बतर हो उठी थी और वह दौड़कर कोठरी के दरवाजे से सटकर खड़ी हो गई।

पदचाप आँगन में धीरे-धीरे उसके कमरे की तरफ ही आ रहे थे कावेरी की सांसें तो धौंकनी की तरह चलने लगीं। उसे लगा जैसे सांसें लगातार फूलती जाने के कारण, उसकी छाती ही फट जायेगी, लेकिन उसने इसकी कुछ भी परवाह किए बिना, अपनी दोनों तलहथियों को पीठ के पीछे किए, पीठ से ही किवाड़ को दाबे रही कि तभी सहसा जयकान्त बाबू की आवाज आयी थी- “कावेरी”।

कावेरी ने अपने पिताजी की आवाज पहचानी थी, लेकिन अभी वह कुछ और सोच पाती कि उसके दिमाग में अखबार की वह खबर दौड़ गयी थी...नहीं वह फाटक नहीं खोलगी...। पिताजी हैं, तो भी नहीं खोलेगी...अचानक ही उसके दिमाग में माँ की बातें गूंज गई थीं...आप पी-खाकर आते हैं...।

नहीं वह फाटक नहीं खोलेगी और देखते-देखते कावेरी लोहे की तरह वज्र हो गई थी अैर झट पलटकर उसने फाटक को अपनी हथेलियों और छाती से दबा दिया था। बाहर से जयकान्त बाबू की लगातार आवाजें उठ रही थीं- कावेरी...कावेरी फाटक खोलो...कावेरी दरवाजा खोलो।

पर कोठरी के भीतर कावेरी ने अपनी देह के अंदर ही सांसें और धड़कनों को इस तरह जमा लिया था कि कोठरी में उसके होने का अहसास हवा तक को न चले।

चन्दन जल न जाए

हाँ, जिस दिन गणपत बी॰एस॰सी॰ पास कर गया था, सचमुच में उस दिन उसके पिता की छाती फैलकर और बड़ी हो गई थी और उसने बड़े गर्व से अपनी मेनकावती को बुलाकर कहा था- “गणपत की माँ, बस इसी दिन का इन्तजार था, आज वह पूरा हो गया। गणपत बी॰एस॰सी॰ कर गया, ईश्वर ने चाहा तो कोई न कोई अच्छी-सी नौकरी मिल ही जायेगी। सच कहता हूँ गणपत की माँ, जब कभी फूदो पांडे और कैलाश घोष के लड़के को उतने ऊँचे-ऊँचे ओहदे पर देखता हूँ, तो मन में बस एक ही बात उठती है- मेरा बेटा भी ऐसा ही होता और अब ऐसा ही होगा।” त्रिलोचन महतो ने आखिरी बातें बहुत गौरव के साथ अपनी पत्नी से कहा था।

और उसी दिन से वह अपनी खेती में और भी तन-मन से लग गया था। यह सोचकर कि इस बार जैसे भी हो, वह दुगुनी फसल पैदा करेगा, नहीं होगा तो वह अपनी पत्नी को भी खेती में साथ कर लेगा। थोड़ी मेहनत-मशक्कत करेगी तो देह-हाथ और बन ही जायेगा। माना कि आज तक खेत नहीं गई, लेकिन संतान के लिए आदमी को क्या कुछ नहीं करना पड़ता है। हमारे पुरखे ही कभी क्या खेत गए, लेकिन आज मुझे जाना पड़ रहा है कि नहीं...और सचमुच में ही उस साल त्रिलोचन महतो की खेती इलाके भर में सबसे अच्छी रही। जमीन तो थी मात्र पाँच बीघा, लेकिन फसल देखकर सबको वाह करना ही पड़ा।

सिद्धो भाय ने एक दिन त्रिलोचन से पूछा था- “क्या त्रिलोचन, तुम तो कभी खेती में इतने लगनशील न रहे, इस बार यह?” तो त्रिलोचन ने हर्ष-विषाद भाव के साथ कहा था- “सिद्धो भाय, यह तो आप जानते ही हैं कि गणपत बी॰एस॰सी॰ कर गया है, अब उसे शहर में पढ़ाना है। अब ऊँची-ऊँची शिक्षा देंगे तो रुपए की जरूरत तो होगी ही। और रुपए के लिए एक यह खेती छोड़कर दूसरा रास्ता मेरे पास है ही क्या?”

तो सिद्धो भाय ने बहुत आत्मीयता से कहा था- “त्रिलोचन, गाँव में कोई एक

अच्छा लड़का होता है, तो समझो वह पूरे गाँव भर का लड़का है। वह तुम्हार ही लड़का नहीं है, हम सबों का है। तुम्हारे लड़के की ऊँची पढ़ाई के लिए सिर्फ तुम्हें नहीं सोचना है, इस गाँव भर को सोचना है। गणपत को तुमने जन्म जरूर दिया है, लेकिन हम गाँववाले उसे अपने पुत्र से कभी कम नहीं समझते।” और यही बात गाँव के कई लोगों ने कही थी। कैलाशपति से लेकर सारंगधर तक ने और तब गणपत का शहर जाना एकदम आसान हो गया था। उसको ऊँची शिक्षा पाना एकदम आसान हो गया था। गाँव के धनी-मानी लोगों ने यह कहकर त्रिलोचन का साथ दिया था कि गाँव के चौवटिये पर बरगद का एक गाछ होता है तो गाँव भर ही नहीं, इलाके-इलाके भर के लोग उसकी छांव में सुख पाते हैं अरे, गणपत भी बड़ा आदमी बनकर आएगा तो समझेंगे गाँव के बीच एक और बरगद का गाछ खड़ा हो गया।

गणपत शहर चला गया था और त्रिलोचन गाँव में कितनी-कितनी कल्पनाओं को लेकर अपने कामों में लीन हो गया था। लोगों ने देखा था कि त्रिलोचन अब ज्यादा खुश है। उसकी खुशी का कारण भी लोगें से छुपा नहीं था। जितने लोग जो भी सोचा करते, त्रिलोचन के लिए सारी बातें ही सही होती। मन्टू बाबू उसे देखते तो कहते- अब त्रिलोचन पर भार ही क्या रहा, बेटे की चिन्ता थी उससे भी मुक्त। मोटाकर बरगद का गाछ हुए जा रहे हो और दूसरी तरफ कामेश्वर सिंह कहते- अब त्रिलोचन को क्या, बस बेटे के लौटने भर की देर है। इंजीनियरिंग की पढ़ाई कर रहा है, वह भी माईनिंग की। लौटेगा तो क्या खाली हाथ? नौकरी लेकर ही लौटेगा। और यह सारी बातें सुनकर त्रिलोचन का जी और भी गदगद हो जाता। उसकी आँखों में और भी चमक भर आती, उसे लगता कि एकबार वह सचमुच में जवान हो उठा है। खुशी से उसकी सारी नसें मसमसाने लगतीं। उस खुशी में वह भी कहने वाले से कह उठता- जिस लड़के के पीछे पूरे गाँव की दुआ और आशीर्वाद चल रहा हो, उसकी कामयाबी में शंका कहाँ रह जाती है।

पूरे पाँच साल तक त्रिलोचन दिन-माह और बरस को आँखों और ऊँगली पर गिनते रहा था। पहले दो-एक वर्ष तो बहुत तेजी से कटे थे, लेकिन जब गणपत के लौटने की अवधि करीब हुई थी, तब दिन भी बड़ा लम्बा होने लगा था। शाय ही कोई ऐसा दिन गुजरता, जब त्रिलोचन गाँव के दो-चार लोगों से इसकी बात नहीं करता कि अब उसके बेटे के आने में बस कुछ दिन बाकी रह गए हैं, उसका बेटा पहली बार गाँव आ रहा है इंजीनियरिंग की परीक्षा पास करके। पत्नी के साथ तो वह घंटों-घंटों, देर रात तक बातें किया करता, और बातों का विषय होता मात्र एक ही- गणपत, उसका लड़का।

और जब उसका लड़का गणपत लौटा था, तो उसके घर में ही नहीं, सारे गाँव

में सचमुच की खुशी दौड़ गई थी। प्रत्येक घर की औरतें आई थीं गणपत को देखने, इतना पढ़-लिख कर जो आया था। गणपत भी सभी के घर आया था गाँव के बुजुर्गों के पैर छूने और त्रिलोचन के हमउम्र लोगों ने त्रिलोचन के घर पर ही आकर गणपत को बधाइयां दी थीं, आशीर्वाद दिये थे। और फिर धीरे-धीरे जीवन सहज होता चला गया था। बातें अवश्य होती थीं गणपत के भविष्य को लेकर- गणपत नौकरी करने चला जायेगा तो त्रिलोचन का घर कितना सूना हो जायेगा और एक तरह से गाँव-टोला भी सूना लगने लगेगा। फूदो पांड़े और कैलाश घोष के दोनों लड़के जब पहली बार गाँव छोड़कर नौकरी के लिए गये थे, तब गाँव कितना सूना लगने लगा था।

त्रिलोचन इसी दुख में डूबा अपनी पत्नी से बातें कर ही रहा था कि गाँव के पुवारी टोले से अचानक ही जोरों का शोर उठा। टॉर्च की रोशनी आकाश और धरती के इधर-उधर, आड़े-तिरछे छिटकने लगी थी। त्रिलोचन ने कान लगाकर सुनने की कोशिश की- आखिर यह शोरगुल कैसा? अपने कमरे से दौड़कर तब तक गणपत भी पिता के पास चला आया था और शीघ्र ही पुवारी टोले का शोर उसके घर में भी गूँजने लगा था- दौड़ियो हो, दौड़ियो हो। गाँव में डकैत घुसी गेलौ छै- और देखते-ही-देखते दस आदमी का शोर हजार के शोर में बदल गया था।

देखते-ही-देखते तीन-चार धमाके भी हो गये। बन्दूक की गोलियों की आवाजें थीं। त्रिलोचन भाले की तरह तनकर खड़ा हो गया और अपने बेटे गणपत से कहा- "भुसकारी के पीछे भाला है, जल्दी से लाकर मुझे दो" और वह स्वयं आगे बढ़कर अपने पिता की बांहें पकड़ ली थी और त्रिलोचन से कहा था- "बाबूजी, गाँव में डकैत घुस आए हैं, गोलियाँ चल रही हैं। जाहिर है कि डकैतों के पास बन्दूकें भी हैं। रात का समय है, इस तरह आपका वहाँ जाना बिल्कुल ठीक नहीं। जान भी जा सकती है।" त्रिलोचन ने बड़ी और फटी-फटी आँखों से घूरकर अपने बेटे गणपत को देखा था और बिना कुछ कहे सीधे पुवारी टोले की तरफ दौड़ गया था। गणपत नहीं गया था। करीब घंटे दो घंटे के बाद त्रिलोचन लौटा था। गाँव का शोरगुल तब तक लगभग शांत हो चला था। जाहिर था कि अपराधी गाँव छोड़कर भाग गए थे। गाँव वाले ने मील भर जरूर उन बदमाशों का पीछा किया था और फिर लौट आए थे। त्रिलोचन भी घर लौट आया था।

गाँव में जिस दिन डकैती हुई थी, ठीक उसी दिन से त्रिलोचन उदास रहने लगा था। एकदम उदास। घर में ठीक से खाता भी नहीं था। खेत जाता तो बस वहीं रह जाता। कभी-कभी तो रात भर। पत्नी भी इस बात को लेकर कम परेशान नहीं थी। गणपत को भी यह बात अखरती थी कि आखिर बाबूजी को हो क्या गया है?

और इस सबसे ज्यादा अखरता था गाँववालों को, कि त्रिलोचन अब चौपाल में आकर बात-बात पर ठहाके क्यों नहीं लगाता।

पत्नी ने बहुत पूछा, बेटे ने भी, लेकिन त्रिलोचन इस मामले में चुप ही रहता। आखिर शनिचर मण्डल ने अपनी सौगन्ध देते हुए कहा- "त्रिलोचन, अगर तुमने अपनी खामोशी का कारण नहीं बताया, तो मेरी लाश देखो।" शनिचर त्रिलोचन का अभिन्न मित्र था, भला उसकी लाश कैसे देख सकता था। वह एक क्षण तो चुप रहा और फिर अचानक ही त्रिलोचन कपस पड़ा था और रोते-रोते ही उसने कहा था- "शनिचर, वह जो गाँव में बाहर से अपराधी आए थे वे तो हमलोगों के विरोध से भाग गए, लेकिन इस गाँव का आदमी, जो इस गाँव के लिए अपराधी बन गया है, उसे किस तरह भगाया जा सकता है? उसे तो भगाया भी नहीं जा सकता है। मेरा बेटा है न! लेकिन शहर की जो अपराध वाली संस्कृति यहाँ फैलाकर हमलोगों की संस्कृति की हत्या करना चाह रहा है, उसके लिए उसे छोड़ा भी तो नहीं जा सकता. ..जानते हो शनिचर...जब उधर गाँव पर उस रात विपत्ति आयी हुई थी, तब मेरा बेटा मेरा हाथ पकड़कर वहाँ जाने से रोक रहा था। वे अपराधी तो कुछ लूटकर चले जाते और यह अपराधी जो मुझे और फिर सारे गाँव को लूटना चाह रहा है, उससे तो हमारे गाँव के हजारों वर्ष की संस्कृति की संपत्ति ही खत्म हो जायेगी।" कहते-कहते त्रिलोचन बच्चे की तरह रो पड़ा और उसके हृदय के दुख का अनुभव कर शनिचर की आँखें भी एकबारगी ही डबडबा आयीं।

अन्तहीन वैतरणी

अरुन्धती के पति आज फिर शराब के नशे में डूबे हुए घर आये थे और आते ही उबल पड़े।

श्वेता कहाँ मर गई, ला मेरे लिए खाना निकाल।

सहमते, डरते हुए वह चुपचाप माँ के पीछे जाकर खड़ी हो गई, उसके मन के भाव को समझते हुए अरुन्धती उसे सो जाने को कहकर स्वयं खाना परोसने लगी। जानती है इस वक्त उमेश अपने वश में नहीं है तथा किसी पर भी उसे हाथ उठाते देर नहीं लगेगी।

पत्नी को सामने देखकर उमेश और भी चिढ़-सा गया लेकिन अरुन्धती हमेशा ही उसे खाने पर जली-कटी सुनाया करती है, रोज दिन से अलग अरुन्धती आज शान्त भाव से खाना परोस कर उमेश के सामने ले आयी और बड़े प्यार से थाली में खाना परोसते हुए उसे खाने का आग्रह की।

उसने देखा थाली में विशिष्ट प्रकार के भोजन लगे हुए हैं, जबकि अन्य दिन सूखी रोटी और एक सब्जी के अलावा कुछ भी नसीब नहीं होती थी।

उमेश बिना किसी राग-द्वेष के खाना खाने लगा। इधर अरुन्धती उसे प्रेम भाव से खिलाती हुई मन-ही-मन सोच रही थी कि आज वह अपने पति से सारी बातें स्पष्ट कह देगी।

आखिर इस बात में रखा ही क्या है? उसने तो कोई गलती की नहीं है बल्कि मजबूरी में उसे यह सब करना पड़ा है।

उमेश खाना खाकर चुपचाप बिस्तर पर गिर पड़ा। गिरते ही वह गहरी नींद में बेखबर सो गया। इस वक्त उसके चेहरे पर एक अजीब मासूमियत छाई हुई है। कोई भी उसे देखकर पियांक न कहेगा। अरुन्धती उसके चेहरे को देखते हुए यह सोच रही थी कि उमेश की यह आदत बुरे बर्ताव से कदापि ठीक न होगी। उसके साथ बहुत ही शांत भाव से पेश आना होगा तथा विश्वास प्राप्त करके ही इस आदत

से छुटकारा दिलाया जा सकता है।

श्वेता अकेली सिर्फ अरुन्धती की ही बेटी तो नहीं है उसके बाप का भी उस पर बराबर का अधिकार है, उसके हक के लिए उसे सही रास्ते पर लाना आवश्यक है।

सात वर्ष की होने को है। लड़की जाति तो ताड़ के वृक्ष की तरह बढ़ती है। अभी ही श्वेता की देहयष्टि ग्यारह-बारह वर्ष के लड़कियों से कम नहीं लगती है। अब तो उसके हाव-भाव में अजीब-अजीब हरकतें आने लगी हैं। अभी से यदि उसके लिए मेहनत-मशक्कत न की गई तो उसकी भी वही गति होगी जो आज उसकी अपनी है।

अरुन्धती की माँ सुशीला उसके पिताजी से हमेशा इसी बात के लिए चिंता व्यक्त करते हुए कहा करती थी कि देखो जी, बेटी पढ़ाई में अच्छी है, उसके पढ़ने-लिखने का काम ठीक ढंग से देखो। मैं तो ज्यादा पढ़ी-लिखी हूँ नहीं जो एसे समझा सकूँ। तुम तो पढ़े-लिखे हो उसकी चिन्ता करना तुम्हारा काम है।

अरुन्धती के पिता रामनाथ बाबू दफ्तर में मामूली क्लर्क थे। सुशीला एवं बेटी सहित परिवार में कुल तीन सदस्य थे। यूं तो परिवार का सारा खर्च स्वयं ही वहन करते पर महंगाई के इस युग में खाना, कपड़ा, रहना इत्यादि पर खर्च करने के बाद पढ़ाई के लिए ज्यादा पैसा नहीं बचा पाते थे। अरुन्धती चूंकि मेहनती एवं प्रतिभाशाली थी, जिस कारण माँ-पिता पर ज्यादा बोझ नहीं पड़ने देती। उसे स्कूल की ओर से छात्रवृत्ति मिलती, जो उसके पढ़ाई के लिए काफी थे।

इसी तरह दिन बीतते गए और अरुन्धती मैट्रिक में आ गई। अब उसे विशेष चिंता सताने लगी थी कि वह बोर्ड परीक्षा में कैसे अच्छे अंक प्राप्त करेगी, जिससे वह दिन-रात मेहनत करने लगी।

आखिर मेहनत रंग ले ही आई। जब अरुन्धती का रिजल्ट आया तो अपने स्कूल की सभी लड़कियों में उसका नाम सबसे आगे था। यह देखकर वह बेहद प्रसन्न हुई थी। माँ-पिताजी अपनी इस पुत्री पर गर्व महसूस कर रहे थे।

अरुन्धती ने अपने पिताजी का आदेश पाकर कॉलेज में दाखिल ले लिया। कॉलेज में भी उतना ही मेहनत करती, जितना कभी स्कूल में किया करती थी।

अच्छे दिन बीतते देर नहीं लगती। न जाने खुदा को क्या मंजूर था। पिताजी जो सुबह-शाम अरुन्धती को लेकर एक सपने बुना करते थे कि वह अपनी बेटी को पढ़ा-लिखा कर इस योग्य बना देंगे कि दहेज माँगने की समस्या ही न होगी, लेकिन रामनाथ बाबू शायद ऐसा गलत ही सोचते रहें पर क्या ऐसा भी कहीं इस संसार में होता है। पिताजी अब धीरे-धीरे अरुन्धती के लिए वर ढूंढने लगे थे पर हर जगह

से सबकुछ पसंद है, लेकिन दहेज परे आकर बात रुक जाती थी। इसी कारण रामनाथ बाबू अंदर-ही-अंदर उखड़े-उखड़े कटे-कटे से रहने लगे। इस तरह एक दिन जो वह गहरी नींद में सोये तो फिर कभी भी उठ न सके।

और फिर अरुन्धती को याद आती है कि किस प्रकार पिताजी की मृत्यु के बाद उसके परिवार पर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा था। वह बीते दिनों की बात सोचती ही चली जाती है कि वह इतनी पढ़ी-लिखी भी तो नहीं थी कि परिवार को संभाल सके और न ही अनुभवी। वह तो जैसे टूट-सी गई थी। ऐसी विपत्ति में उसके परिवार वाले भी नाता तोड़ गये थे।

किसी तरह उसने अपनी पढ़ाई को जारी करने का फैसला किया और माँ सुशीला देवी अपने घर में ही अड़ोस-पड़ोस वालों का कपड़ा सीने लगी। इस परिवार से अगर किसी को सहानुभूति थी तो वह एक ही व्यक्ति था रंजन। जो अरुन्धती के पड़ोस में कुछ पहले आकर किराये में रहने लगा था। यहाँ वह अपनी पढ़ाई के सिलसिले में आकर रह गया था।

रंजन की मेडिकल की पढ़ाई का अन्तिम वर्ष था। उसके पिताजी चाहते थे कि वह अमेरिका जाकर और ऊँची डिग्री हासिल करे। इस जिद के आगे उसे झुकना पड़ा। विदेश जाने के पूर्व वह अरुन्धती से मिलने आया था और यह कहकर गया कि चिंता न करे, वह वहाँ से उसके नाम पैसा भेजता रहेगा और अरुन्धती अपने पढ़ाई को जारी रखेगी। वहाँ से लौटकर वह अरुन्धती से अवश्य विवाह करेगा। यह बात उसके सिवा और कोई नहीं जानता था।

रंजन की बातें याद करते ही अरुन्धती का सारा बदन एक अजीब कंपकंपी से भर उठा वह यूं चमक उठी जैसे उसकी देह को करंट छू गया हो। स्थिर हुई तो उसे रंजन की एक-एक बातें याद आने लगी।

रंजन के जाने के बाद अरुन्धती बेहद उदास-सी रहने लगी थी, पर धीरे-धीरे सबकुछ सामान्य कर उसने अपनी पढ़ाई को जारी रखा। और माँ सुशीला को अब बेटी के विवाह की चिंता बेहद सताने लगी और तब तक एक दिन अचानक ही अरुधन्ती ने सुना कि उसकी शादी उमेश से लग रही है। माँ काफी खुश थी कि लड़का बैंक में काम करता है। तीन हजार रुपए कमाता है। माँ-बेटी को कभी दुःख की छाया नहीं देखनी पड़ेगी। उमेश को अरुन्धती पसंद आ गई थी, इसी से बिना दहेज की दोनों की शादी हो गई।

लेकिन माँ को क्या पता था कि लड़का नशे का भी अभ्यस्त है। अरुन्धती तो यह बात अपने सुहागरात के दिन ही जान गई थी, जब उसकी बोली लड़खड़ा रही थी और मुँह से अजीब एक दुर्गन्ध निकल रही थी।

और तब से लेकर आज तक उमेश की आदत में कोई कमी नहीं आई। अब तो वह बाप भी बन चुका है। शादी करने लायक बेटी का पिता। लेकिन उमेश को इसकी फिक्र ही कहाँ है? अरुन्धती की कभी इच्छा ही नहीं थी उसकी शादी उमेश से...। लेकिन माँ की जिद के सामने वह हार गई थी। उमेश से कहीं अच्छा था रंजन-अपनी बातों और व्यवहारों में।

लेकिन अंतिम बात सोचते ही अरुन्धती जैसे एक बार फिर झनझना उठी। परसों की तो बात है पड़ोस की रधिया ने उसे बताया था कि विलायत से डॉक्टरी पास करके एक बहुत बड़े डॉक्टर बाबू आये हैं। लोगों का कहना है कि वह वही डॉक्टर बाबू हैं जो अपने मोहल्ले का रंजन हुआ करते थे। उसने रधिया की बातें सुनकर दूसरे ही दिन सच्चाई का पता लगाया था-उसका ही रंजन था। बहुत बड़ा डॉक्टर बनकर लौटा है और न जाने क्या सोचकर अरुन्धती पहुँच ही गई रंजन के पास।

रंजन उस समय बिल्कुल अकेला ही अपने कमरे में उदास-उदास। रंजन की आँखें ज्योंहि अरुन्धती पर पड़ी थी जैसे कमल खिल गया था उसके चेहरे पर। अचानक ही जैसे रात के अंधेरे में पूरा चांद उग आया हो। कुर्सी से उठते ही उसने अरुन्धती के हाथों को पकड़ते हुए कुर्सी पर बिठाया था।

न जाने क्यों अरुन्धती भी विरोध न कर पायी थी और रंजन ने ही पहले कहना शुरू किया था। अरुन्धती, तुम मेरा इंतजार नहीं कर पायी तो कोई बात नहीं। देखो, मैं आजतक तुम्हारा इंतजार कर रहा हूँ। अगर तुम पाँच वर्ष और नहीं आती तो भी मैं तुम्हारा इंतजार करता। पाँच वर्ष की तो बात छोड़ो अरुन्धती, मैं तो सारी उम्र तुम्हारे इंतजार के लिए तैयार रहता।

- लेकिन मेरा इंतजार अब क्यों कर रहे हो?

मैंने अजीब उदासी के साथ उससे कहा था- क्या तुम्हें नहीं मालूम कि मैं अब...और मेरी बातों को सुनकर रंजन ने बड़े ही कातर स्वर में कहा था- मुझे सब पता है अरुन्धती। और मैंने सब पता लगाया है। मैं यहाँ तक जानता हूँ कि यह शादी तुम्हारी इच्छा के विरूद्ध हुआ था।

- तुम चाहो तो...

रंजन, मैं रंजन की बातों को सुनकर अचानक ही चीख उठी थी और उसकी किसी भी बातों को सुने बगैर चुपचाप उठकर चली आई थी। रंजन ने शायद कुछ कहा था बाहर तक आते-आते...।

'ओह!'

उमेश की ही कराह थी और अचानक अरुन्धती का ध्यान भंग हुआ और

उसने अपनी दृष्टि बगल में सोये हुए उमेश पर बड़ी कातरता और व्याकुलता के साथ डाली। उमेश एक कराह के साथ पुनः करवट बदल कर सो गया। कमरे में उसके मुँह से निकल रही भभक अब भी फैल रही थी।

अरुन्धती को इस दुर्गन्ध भरी भभक से जैसे मितली-सी आने लगी। लेकिन अब सबकुछ बर्दाश्त करने का अभ्यास कर चुकी है। एक ही चीज है जिसे वह बर्दाश्त नहीं कर पा रही है- वह अपनी पूर्ण हो गई युवती बेटी श्वेता का अविवाहित जीवन और श्वेता की याद आते ही उसकी बढ़ती काया, उसके शरीर के पूर्ण उभार उसकी आँखों में घुमने लगी। उसका मन किया कि वह उमेश को जगाये और उठाकर ले जाये श्वेता के पास और दिखाए कि क्या अब भी ये शादी के योग्य नहीं है। लेकिन यह सोचकर अरुन्धती गुस्से से मौन रही कि आखिर यह कर भी क्या सकते हैं। सिर्फ यह कहने के सिवा-मैं क्या कर सकता हूँ, क्यों तुमने बेटी को जन्म दिया?

मेरे कहने पर उन्होंने बार-बार यही कहा है। और इन बातों को याद कर अरुन्धती का मन क्रोध और ग्लानि से भर गया। घंटे भर मन-ही-मन सागर की तरह उफनती रही।

और फिर अचानक ही कुछ सोचकर बहुत गंभीर-सी होने लगी, जैसे ज्वार के उतरने से उसके चेहरे पर शांति उतरने लगी हो। अरुन्धती ने मन-ही-मन सोचा। क्या हर्ज है अगर वह रंजन की बातों को स्वीकार ही कर लेती है। बस वह इतना ही न चाहता है कि मैं उसकी बनकर रहूँ। उमेश की तो अब यह भी इच्छा नहीं रही और जहाँ तक मेरी बात है, मेरे जीवन में अब रहा ही क्या। मैं उमेश की पूर्ण पत्नी बनकर रहना चाहती हूँ लेकिन उमेश को इससे भी खुशी नहीं होती। उसे मेरे मन से कुछ भी लेना-देना नहीं। एक मेरी देह से उसे कुछ लेना-देना है। नश में मेरी देह झिंझोड़ने के सिवा इसने कब मेरे मन को भी झांकने की कोशिश की। इससे तो अच्छा...सोचते-सोचते अरुन्धती रुकी नहीं। उमेश और रंजन में कुछ भी अंतर नहीं। उमेश को मेरी देह से प्यार है और रंजन को भी। उसे इस बात से कुछ भी लेना-देना नहीं कि मैं विवाहित हूँ या कुंवारी। अरुन्धती को जैसे एक बारगी ही सारी पुरुष जाति पर क्रोध हो आया।

अरुन्धती कुछ सोचकर पुनः गंभीर हो उठी-अगर उमेश और रंजन को सिर्फ मेरे शरीर से मतलब है तो क्या अंतर पड़ता है कि मैं उमेश के पास रहूँ या रंजन के पास। उमेश के पास तो पीने के लिए ही रुपये बच गए हैं। सारे मुहल्ले वाले क्या-क्या कहते फिरते हैं, मुझे सब पता है। मैं अगर रंजन के पास चली गई तो लोग फिर कुछ कहेंगे- जैसा पति निकला, वैसी पत्नी। कहेंगे तो कहेंगे। आदर्श और पारिवारिक प्रतिष्ठा क्या सिर्फ नारी के लिए ही होते, पुरुषों के लिए नहीं। जब उमेश

को ही इससे कुछ लेना-देना नहीं तो मेरे सही बने रहने से क्या होगा, लोग कुछ भी कहें मुझे इससे क्या लेना-देना और मैं यह भी खूब समझती हूँ कि लोग सिर्फ छोटे लोगों को कहते-सुनते हैं, बड़ों को न तो कहने का दम है, न तो बड़े इनकी बातों को सुनते।

सोचते-सोचते अरुन्धती के चेहरे पर एक अनछुई शान्ति के साथ-साथ खुशी के भाव भी छलक उठे। उसने अपनी आँखें बंद कर ली और अपनी बंद आँखों में ही उसने देखा-श्वेता मंडप के बीच अग्नि के चारों ओर अपने पति के साथ भांवरे दे रही है। लाल रेशमी साड़ी के बीच वह अड़हुल की फूल हो उठी है। कलाई से बहुत ऊपर तक वह सोने की चूड़ियों से भरी कितनी झुक-झुक कर खिल रही है। इन सारी चीजों को एक साथ देखते ही अचानक ही खुशी से बोल पड़ी- रंजन, मैं तो... अरुन्धती की अचानक ही बोली रुक गई थी। उमेश अभी भी बगल में उसी प्रकार करवट बदले सो रहा था। उसने एक बार उमेश को एक अजीब अनजानी दृष्टि से देखा। फिर घंटों सोचती रही, वह कुछ सोच नहीं पा रही थी कि क्या करे। फिर उसकी आँखों के समक्ष अन्धकार के सौ-सौ सागर उमड़ते हैं और उसके बीच सौ-सौ सूरज।

कैसी द्रौपदी : कैसा महाभारत

10.05.80

मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि माधवी यहाँ तक उतर सकती है। यह किसी तरह भी नहीं हो सकता है। मैं माधवी को बहुत अच्छी तरह जानता हूँ। माता-पिता पुरोहित-पण्डित-सा जीवन जीने वाले और माधवी पही संस्कार अपने माता-पिता से पायी है। मुझे परमेश्वर से कभी कम नहीं मानती है। जब तक साथ रहना हुआ, बिना मुझसे आशीर्वाद लिये, बिना मुझे खिलाये, कभी एक कौर अपने मुँह में नहीं डाली। और इसी पवित्र रिश्ते के बीच माधवी पांच-पांच बच्चों की माँ बन गई। पांच बच्चे की माँ, उस पर बड़ा लड़का सोलह साल का। मैंने भी क्या-क्सा सोच लिया माधवी के लिए। आते वक्त जिस तरह मेरे पैर पर जल रख कर टेक दी थी और आज जब घर से निकल रहा था, तो उसकी आँखों में गंगा उमड़ पड़ी थी। आखिर क्यों नहीं? माधवी का मन गंगा की तरह पवित्र था। ये तो आदमी ही है जो अपना मल-मूत्र गंगा में बहाता रहता है और गंगा, पवित्रता की धार में बहती रहती है। पुरुष मन कितना शंकालु होता है। क्या-क्या नहीं सोच लिया मैंने माधवी के लिए। खैर उसके एक आँसू ने सबकुछ बहा दिया है। मेरा मन स्थिर हो गया है, नहीं तो न जाने क्या कर बैठता।

20.05.80

आखिर मुझमें कुलवंत सिंह ने क्या देख लिया जो पूछ बैठा- वीरेन्द्र, तुम्हारा ये चेहरा उखड़ा-उखड़ा क्यों लग रहा है? तुम जब से लौटे हो, ऐसा लगता है जैसे कोई चिन्ता तुम्हारा पीछा कर रही हो। घर में भाभी-बच्चे तो ठीक-ठाक हैं न, कहीं भाभी को लेकर चिन्तित तो नहीं हो? कुलवंत की बातें अभी तक मेरा पीछा कर रही है। सचमुच, मैं माधवी की बात को लेकर परेशान तो हूँ ही। सबकुछ साफ हो जाने के बाद भी मन तो घर के दरवाजे पर ही जा दौड़ता है जैसे किसी की तलाश रहे, कौन आता है कौन जाता है। इतनी रात बीत गई, माधवी अब तक जाग रही है क्यों?

इतनी रात तक तो माधवी कभी नहीं जागती। मुझे आज भी अच्छी तरह याद है वो दिन जिस दिन माधवी पहली बार ससुराल आयी थी, उस रात भी माधवी ने उसके साथ जागने से इंकार कर दिया था। पता नहीं यह सब बातें आज क्यों मेरे मन में रह-रह कर उठ रही है। सिर्फ आज की बात नहीं है। दस दिन से ये बातें मेरा पीछा कर रही है, लेकिन मैं यह सब सोच क्यों रहा हूँ? यह तो माधवी के साथ सरासर अन्याय है।

लेकिन इसमें अन्याय की क्या बात है? आज तक ये बातें मन में कभी नहीं उठी, और इतने सालों बाद यकायक क्यों उठ रही है। आदमी के शरीर-मन का अपना गति होता है। समय-समय पर बदल जाता है। और ऐसी हालत में यदि माधवी बदल गई है तो इसमें मुझे आश्चर्य क्यों हो रहा है। पहले जब भी मैं घर पहुंचता तो अपने बेटे-बेटी के सर-सम्मान के लिए मुझे दौड़वाती, लेकिन इस बार तो मकान मालिक ही सब सामान ऊपर से भिजवा दिया था। यहाँ तक कि दो-तीन दिन का खाना-पीना मकान मालिक के साथ ऊपर ही चला था। जब मैं मकान का किराया देने गया तो कितनी आत्मीयता से हंसते हुए कहा- अरे भाई साहब, अभी मुझे पैसों की कोई जरूरत नहीं है, अपनी पत्नी के पास रख दीजिए, जरूरत पड़ने पर मँगवा लूँगा।

आज तक तो ऐसा कभी नहीं हुआ। घर पहुंचते ही मकान मालिक किराया लेने हाजिर। लेकिन इस बार क्या हो गया था, मैं माधवी के पास मकान किराया लगा तो आया था, लेकिन वह किराया मकान मालिक लिया होगा? जरूर ले लिया होगा, नहीं लिया होगा तो माधवी पहुंचवा दी होगी। उसे चरित्र से डिगाना खेल नहीं है। लेकिन उस दिन माधवी किस तरह मकान मालिक से घुलमिल कर बात कर रही थी। हो भी क्यों नहीं, आदमी जब अकेला रहता है, तो सुरक्षा के लिए उसे संबंध बनाना भी पड़ता है और ऐसे संबंध को शंका की आँख से देखना ठीक नहीं। ये तो मेरे सबसे बड़े कमजोर आदमी होने की निशानी है।

22.05.80

इस तरह घुट-घुटकर जीना ठीक नहीं, यदि मन में कोई बात उठ रही है, तो इसका फैसला हो जाना चाहिए। मैं कोई औरत नहीं हूँ। मर्द हूँ और जो मर्द इन सब बातों को चुपचाप मन-ही-मन सहते रहे, उन बातों को घुटते रहे, वैसी मर्दानगी को धिक्कार है। इस तरह से तो माधवी को भी मैं ही कलंकित कर रहा हूँ। कहते हैं कि किसी बात को बार-बार सोचने से वह हो ही जाता है, भले ही वह नहीं होने वाला रहे। कहीं मेरी ये बात किसी तरह खुल गई तो माधवी अवश्य ही जहर खाकर जान दे देगी, या कि कुएं या नदी में धौंस देकर ही और तब मेरी जिन्दगी का क्या होगा? माधवी के बिना तो जीवन अंधकारमय हो जायेगा। अंधेरा, घुप्प अंधेरा। नहीं,

नहीं, न तो वह उसकी जिन्दगी में अंधेरा होने देगा, न अपनी जिन्दगी में। मैं 30.05 को ही घर लौट जाऊंगा। घर लौटना ही पड़ेगा। अब इस तरह अंधेरा और कांटा पर चलना ठीक नहीं।

30.06.80

माधवी दूसरे कमरे में है और मैं इस कमरे में। जिस समय मैं घर की दहलीज पर कदम रखा था उस वक्त उसके चेहरे पर वह उल्लास नहीं था, जो इससे पूर्व हुआ करता था। क्यों नहीं था? हो सकता है शर्मो-हया बेच खायी। साथ में जवान बेटा-बेटी दौड़ पड़े थे मेरी खातिर। इसी से...। लेकिन माधवी अब तक आयी क्यों नहीं है? क्या मेरा आना अखर रहा है उसे? हो सकता है। औरत के चरित्र को समझना बहुत कठिन है। मेरे मन की शंका फिजूल नहीं है। हो सकता है मेरा शंकालु मन इतनी बात सोच रहा है, सोचता-चला जा रहा हूँ तो सोचता जा रहा हूँ कि ऐसा ही होता है। जिधर धकेल दिया, उधर लुढ़कता चला गया। मेरी भी क्या हालत है। एक बार माधवी के बारे में गलत क्या सोच लिया, मेरा मन गलत ही सोचता चला जा रहा है। हो सकता है बेटा-बेटी के जागते रहने के कारण लाजवश माधवी न आ पा रही हो।

लेकिन बात यह सब नहीं है, बल्कि बात वही है, जिसके बारे में मेरा मन लगातार सोच रहा है। आखिर रामदेव की उस मुसकान का क्या मतलब हो सकता है? गाड़ी से उतरते ही ठेकेदार रामदेव ने मुझसे यह क्यों पूछा कि वीरेन्द्र भाय इस बार इतनी जल्दी? बीस-पच्चीस दिन दिन में ही घर वापस आ गये हैं और जब मैंने कहा था- परिवार देखने आ गया हूँ तो रामदेव भाय ने मुस्कुरा कर कहा था- परिवार के लिए अब परेशान होने की आवश्यकता नहीं है, जब जरूरत थी तब आपने सोचा नहीं अब तो मकान मालिक का सहयोग प्राप्त है। आखिर रामदेव के कहने का क्या मतलब है। अच्छा भाव तो कभी नहीं हो सकता। जरूर कोई ऐसी बात है जिसे उसने मुझे घुमा फिरा कर कह दिया हो।

माधवी भी नहीं आ रही है इससे यह बात स्पष्ट है। आज तो मकान मालिक भी मेरे आने का नोटिस नहीं लिया। शायद उसे भी मेरा आना अच्छा नहीं लगा हो। अच्छा नहीं लगा तो सोचता हूँ- ऐसी जिन्दगी जीने से तो बेहतर है मर जाना। ... लेकिन इससे क्या हो जायेगा? जहाँ मैं नौकरी करता हूँ, मर तो वहाँ भी सकता था। जब यहाँ आ गया हूँ तो सिर्फ मेरे मरने से क्या होगा? माधवी भी बचकर क्या करेगी? और जब माधवी भी नहीं रहेगी तो इन पाँच-पाँच बच्चों का क्या होगा। ये बच्चे बच पायेंगे तो समाज इसे क्या-क्या नहीं कहेगा। दो जवान हो रही बेटी का क्या होगा? जब पांच बच्चे की माँ असुरक्षित हो सकती है...। रोज के अखबार में

छपता है। एक नहीं चार-चार घटना एक साथ। आदमी-आदमी न रहकर हैवान हो गया है हैवान बच्ची, मासूम भी नहीं समझता है। मैं कुछ नहीं बचने दूंगा। न माधवी, न बच्चा और मैं स्वयं को भी। सब जहर के एक भोजन में समाप्त। सब महाभारत खत्म। एक दिन का महाभारत और होता रहे। कोई कुछ न जान पायेगा। किसी को कुछ नहीं बताऊंगा।

दूसरे दिन कुहराम मच गया था। संपूर्ण गाँव टोले में यह खबर फैल गई कि वीरेन्द्र बाबू ने जहर खाकर जान दे दी। पुलिस विभाग के आदमी थे, इसी से दारोगा, हवलदार सभी दौड़े आये थे। दनादन। वीरेन्द्र बाबू की लाश टेबुल पर औंधा पड़ा मिला था और उनके सामने जहर की एक शीशी पड़ी थी, जिसके तेज गंध पूरे कमरे में धुल रही थी। सिर के नीचे डायरी पड़ी थी। साफ जाहिर हो रहा था कि वीरेन्द्र बाबू डायरी लिखने के बाद जहर खा लिये थे। पुलिस ने लाश और डायरी अपने गिरफ्त में ले ली थी। पूरी डायरी पढ़ी गई थी। आखिरी दिन की डायरी 30.06.80 की रात में लिखी गयी, जिसमें यह लिखा था- आज 30.06.80 की रात है, कितनी भयानक लग रही है यह रात। माधवी भी साथ नहीं है। मैंने ही माधवी को मना कर दिया है कि आज रात इस कोठरी में नहीं आना। उसका इसमें कोई दोष नहीं है वह निर्दोष है- सब तरह से निर्दोष। दूर-दराज में कार्य करने के कारण मेरी छुट्टी बिल्कुल नदारद रहती थी। आज यहाँ ड्यूटी तो कल वहाँ ड्यूटी। आज ये मिनिस्टर तो कल वो मिनिस्टर। दौड़ते रहे सबके पीछे और फिर मेरे तनख्वाह में मुझे मिलता क्या का। मेरी जिन्दगी तो बस कट जाती थी लेकिन परिवार तो वरदी में नहीं रह सकता और परिवार चलाने के लिए रुपये कम पड़ते थे। मुझे नहीं मालूम यह घर कैसे चल रहा था बल्कि मेरी कमाई में यह घर इतने सुव्यवस्थित ढंग से कैसे चल रहा था? मैं किसी को दोष नहीं दे सकता। मुझे कोई अधिकार भी नहीं है। लेकिन इतना तो मुझे अधिकार है कि मैं अपनी जान दे सकूं। और मैं यह सोचकर अपनी जान दे रहा हूँ कि मेरे बाद अनुकम्पा के आधार पर मेरी पत्नी माधवरी को नौकरी अवश्य मिल जाएगी। और यह घर वह ज्यादा सुख से चला पाएगी। तब तक एक व्यक्ति और कम हो जायेगा। मेरा कम हो जाना बेहद आवश्यक है- अपने लिए ही नहीं शायद माधवी के लिए भी।

निराशा

सुनीता बार-बार सोचती है कि वह अपनी बीती जिन्दगी के एक-एक अक्षर को भूल जाएग। लेकिन जब-जब ऐसा करने का प्रयास करती है तब-तब उसके दिमाग पर उसकी बीत जिन्दगी का सारा अंधकार एकबारगी छा जाता है और वह उस अंधेरे मं इतना खो जाती है कि घंटे लगातार हाथ-पांव मारने के बावजूद उस अंधकार से बाहर नहीं निकल पाती।

सुनीता ने इस अंधेरे से बचने के लिए ही प्राइवेट स्कूल में नौकरी पकड़ ली थी। इसके पीछे उसने यह सोचा था कि बच्चों के बीच रहने, पढ़ने और पढ़ाने से उसका मन हल्का हो जायेगा, साथ ही स्कूल के बच्चों में ही अपने बच्चे की झलक देख लेगी और उसका मातृत्व जैसे-तैसे पूरा जायेगा। इस तरह उसके जीवन का अकेलापन भी अपने आप उससे दूर चला जायेगा।

यही सोचकर वह अपनी ससुराल से तंग आकर अपने मायके चली आई थी। फिर अचानक एक दिन माँ-बाप के लाख मना करने के बावजूद वह वहाँ से निकलकर शहर के एक स्कूल में शिक्षिका बन गई। यह स्कूल उस शहर का अच्छा-खासा स्कूल था। तीन सौ से अधिक बच्चे पढ़ते थे। सभी बच्चे सुनीता को मानते भी बहुत थे। उसके मृदु स्वभाव के कारण छुट्टी होते ही सभी दीदी-दीदी कहते उससे लिपट जाते थे।

सुनीता उस बच्चे में से किसी एक बच्चे को गोद में उठा लेती और सभी बच्चों के बीच बैठकर देश-विदेश की कहानियां कहते-कहते अचानक ही रुक जाती थी और उसके चेहरे पर एक अजीब उदासी और सूनापन फैल जाता था। बच्चे उसके चेहरे को देखकर कुछ अजीब असमंजस में पड़ जाते और उनमें से एकाध दीदी की उदासी का कारण भी जानना चाहते, लेकिन सुनीता तो कुछ इस तरह अपनी उदासी में डूबी रहती कि बच्चों का ख्याल ही न रहता। इस तरह उदासी भरे चेहरे को देखते

हुए बच्चे एक-एक कर चले जाते थे।

जो बच्चे कुछ महीने तक सुनीता के साथ ही खेलने में आनन्द पाते थे, अब उन्हें उनके पास ही जाने में डर लगने लगा था और सुनीता जो अपने शुरू के दिनों में स्कूल के बच्चों के साथ घुली-मिली रहती थी अब अपनी ही उदासी को लेकर इन बच्चों से कटी-कटी-सी रहने लगी। किसी यंत्र की तरह वह क्लास जाती थी और खिंची-सी अपने कार्यों को पूरा कर अपने कमरे में लौट आती थी।

आज छः रोज हो रहे हैं सुनीता स्कूल नहीं आई। एक आवेदन पत्र भिजवा दिया कि उसकी तबीयत बहुत खराब हो जाने के कारण पन्द्रह दिनों तक स्कूल न जा पायेगी। कारण यह है कि छः दिन पूर्व ही उसे अपने पति का पत्र मिला है। पति के हाथ की लिखी एक लम्बी चिट्ठी। वह उस लंबे पत्र को बार-बार पढ़ती और गहरी चिन्ता में डूब जाती है। कई बार उसका मन होता है कि वह पत्र को फाड़कर फेंक दे और एक पत्र अपने पति के नाम लिख दे। उस पत्र में साफ-साफ संबंध विच्छेद की बात हो।

कुर्सी पर खोई-खोई-सी बैठी सुनीता ने कुछ सोचा और एक झटके के साथ अपनी डायरी से अपने पति के उस पत्र को फिर से निकालकर पढ़ना शुरू किया। एक-एक अक्षर पर आँखें गड़ा-गड़ाकर। पत्र कुछ इस प्रकार था-

सुनीता,

तुम अगर यह सोच रही हो कि मुझसे मुक्त होकर आराम से जिन्दगी जी लोगी तो यह सोचना तुम्हारी भूल है। तुम मेरी पत्नी हो, इसे सभी मानते हैं और तुम भी जानती हो। मैं क्या हूँ, क्या करता हूँ तुम्हें इन बातों से कुछ भी लेना-देना नहीं। और न होना चाहिए। तुम अगर यह चाहती हो कि मैं तुम्हारे अनुसार चलूं तो यह तुम्हारी मूर्खता है। पत्नी पति के अनुसार यह बात शास्त्र से लेकर समाज तक कहता है। तुम जिस तरह इस घर से निकल कर चली गई हो, उससे मेरे खानदान और परिवार की प्रतिष्ठा पर आँच आ गई है।

तुम स्कूल में नौकरी कर रही हो, मैंने यह भी पता लगा लिया है। पाँच सौ रूपए में तुम्हें पेट भी पालना मुश्किल हो रहा होगा। तुम चुपचाप यहाँ चली आओ। घर में इतनी संपत्ति और अनाज पड़े हैं कि तुम तो क्या तुम्हारे पूरे परिवा रका भी भरण-पोषण तुम्हारी उम्र भर करता रहूँगा तो कोई अन्तर नहीं पड़ने वाला और अंत में यह भी जान लो कि तुम स्वयं नहीं आई तो मेरे आदमी तुम्हें ले आयेंगे।

तुम्हारी ही
काशीनाथ

पत्र की अन्तिम पंक्ति को पढ़ते-पढ़ते सुनीता सिर से पांव तक सिहर उठी। वो इस बात को अच्छी तरह जानती है कि उसका पति क्या है। पैसे की धाक है, नेता से लेकर दारोगा तक उसके द्वार पर चाय पीने के लिए आते हैं। समाज के सभी प्रतिष्ठित लोग उसके यहाँ पड़े रहते हैं। मैं यदि किसी के पास जाकर यह कहूँ कि मेरे पति रोज शाम को शराब के नशे में मुझे बहुत पीटते हैं, और गंदी-गंदी गालियां बकते हैं तो मेरी बात पर कौन यकीन करेगा? माता-पिता से भी यह बताया तो माँ ने भी मुझसे यही कहा- बेटी, अब तुम्हारा वही घर तुम्हारे लिए स्वर्ग है। अब तुम्हारे पति जैसे भी हैं, तुम्हारे देवता हैं।

माँ की बात याद आते ही सुनीता का मन कसैला हो गया, तो क्या उसे माँ की बात मान लेनी चाहिए? जिस बात को लेकर वह ससुराल छोड़ महीनों पहले मायके और मायके से स्कूल चली आई उसे भूलकर। क्या उसे पैर तले रौंदने के लिए अपने उसी बेरहम पति के साथ जिन्दगी जीने के लिए तैयार हो जाय। या सचमुच के नरक को स्वर्ग समझ लेने का भ्रम पाल ले। ऐसा सोचते ही सुनीता का मन अजीब घृणा और गुस्से से भर उठा। कब उसकी मुट्ठी कस गई, उसे पता ही नहीं चला।

सुनीता ने अपने तने हुए नस को ढीला कर चिट्ठी की पीठ पर आवेग के साथ लिखना शुरू किया-

काशीनाथ,

तुम मुझे अब भी अपनी पत्नी समझ रहे हो, यह मेरे लिए कोई मायने नहीं रखता। इस रिश्ते को तो मैं दस-ग्यारह माह पूर्व तोड़-ताड़ कर चली आई हूँ। तुम अपनी संपत्ति से अपने परिवार को भी ठीक-ठाक चला सको तो एक आदमी होने के नाते मुझे तो खुशी होगी।

मैं यह भी जानती हूँ कि नारी अब भी पैसे की संस्कृति के सामने छोटी पड़ जाती है। तुमने मुझे अपने आदमियों से लिवा लाने की बात लिखी है। तुम्हारा दुःसाहस या स्वप्न कभी पूरा भी हो सकेगा, मुझे नहीं लगता। जीवन जीने के लिए रुपये की जरूरत तो होगी ही, जिसके लिए मैं किसी गुमनाम शहर में नौकरी करूंगी, कमाऊंगी ताकि अपने अतीत का बदला चुका सकूं। इस पत्र के पाने से पूर्व ही मैं यह शहर छोड़ चुकी हूँगी और अगर तुममें थोड़ी भी समझदारी होगी तो इस पत्र को तलाक के पत्र के सिवा कुछ भी नहीं समझोगे।

शिक्षिका
सुनीता

पत्र लिख देने के बाद सुनीता का गुस्सा और घृणा दोनों एकबारगी शांत हो

गए। उसने आहिस्ता से उस पत्र को लिफाफे के अंदर बंद कर दिया। बाहर स्कूल का माली बगीचे की देखभाल कर रहा था। उसने धीरे से माली को पुकारा और लिफाफे पर पता लिखकर माली के हाथ में थमाती हुई डाक में डाल आने के लिए कहा।

माली जा चुका था। शाम का अंधेरा भी उतरने लगा था। सुनीता ने अपनी आँखें उठाकर दरो-दीवार को देखा। उसे सबकुछ आत्मीय लग रहा था, पर उसने उन बातों की ओर जाने से मन को एकदम रोक दिया। फिर एक झटके के साथ अपनी बन्द अटैची लेकर अपने आपको कमरे से बाहर कर लिया और पीछे से पसरे अतीत को अंधेरे से बचने के लिए धीरे-धीरे सड़क के अंधेरे में खोती चली गई...खोती चली गई।

चन्दन विष

क्या ऽऽ...माया का मुँह एक आश्चर्यमिश्रित भाव के साथ खुले के खुले रह गये। वह उसे अपलक जाते हुए देखती रह गई। वह समझ नहीं पाती है कि यह वही सूसन है, जो कल तक उसके सामने एक छोटा-सा, नन्हा-सा बालक था या वह कहीं से धोखा खा रही है। नहीं, नहीं ऐसा नहीं हो सकता है वह इसे बचपन से ही जानती है, और जानेगी क्यों नहीं। वही उसकी माँ है और वही उसकी बड़ी भाभी। उसे वह दिन आज भी अच्छी तरह याद है जब वह इस घर में ब्याह कर लायी गई थी। उसकी सास को मरे अभी एक महीना भी नहीं हुए थे कि सूसन की जिम्मेदारी को सही ढंग से निभाने के लिए उसके ससुर ने अपने बड़े बेटे महेश की शादी माया से कर दी, क्योंकि इस घर में एक औरत की विशेष आवश्यकता थी, जो तीन-चार साल के सूसन की सही देखभाल कर सके और इस घर को संवार सके।

माया के आते ही सारे घर की जिम्मेदारी उसी पर आ गई, क्योंकि वह इस घर की बड़ी बहू भी थी और छोटे देवर की जिम्मेदारी भी उसी पर थी और ससुर जो सास के बिना अधूरे हो गये थे, उनकी जिम्मेदारी भी माया पर ही थी। सूसन इतना छोटा था कि उसे मालूम ही नहीं था कि वह उसकी माँ है या भाभी। परन्तु माया को तो अपनी जिम्मेदारी अच्छी तरह मालूम था। जब वह ब्याह कर इस घर में आयी थी, तब सूसन को वह अपने ही बगल वाले कमरे में सुलाया करती थी। कभी-कभी वह डरकर माया के कमरे में आ जाया करता था और उसके भय को दूर करने के लिए माया उसे अपने पलंग पर ही सुला देती थी। अब तो इसकी अभ्यस्त हो चली थी, क्योंकि इसे तो उसे निभाना ही था।

धीरे-धीरे समय की चक्र गति घूमती रही और सूसन भाभी के हाव-भाव में डूबता गया और माया उसे अपने अनुरूप ढालती रही। अपने प्यार से उसे इतना बांधती कि सूसन भी उससे अलग नहीं हो पाता। सूसन की पढ़ाई से लेकर खाने-पहनने की चिन्ता सभी का ध्यान माया को ही रहता। वह उसके पसंद को

सर्वोपरि मानती। सूसन जो बातें अपने पिता एवं भाई से संकोचवश या भयवश नहीं कह पाता, उसे अपनी भाभी माया को बेहिचक कह देता। इन दिनों सूसन माया से हंसी-मजाक में ऐसी-ऐसी बातें कह जाता तो माया उसे उसकी बचपन की हरकत का समझ भूल जाती। वह कभी भी उसकी इन बातों पर विशेष ध्यान न दे पाती।

आज भी सूसन और दिनों की तरह आकर माया की बगल में लेट गया था। माया आदतवश उसके सिर को अपनी गोद में ले उससे बातें करने लगी। सूसन भी धीरे-धीरे माया के बालों को हाथों में ले उसके लट छुड़ाने के बहाने सहलाने लगा। सूसन ने माया से धीरे से कहा- "भाभी, मैं आपके बालों को इस तरह सहलाता हूँ, तो तुम्हें कैसा लगता है।" और इस प्रश्न के उत्तर को सुनने के लिए वह माया के चेहरे को गौर से निहारने लगा। पर माया तो इसे सहज स्वभाव वश एक छोटी-सी हरकत मान रही थी। और प्रत्युत्तर में उसने कहा- कैसा लगता है, जब भी कोई बच्चा अपनी माँ के बालों को इस तरह सहलाता है तो कैसा लगता है। सूसन माया की बातें सुन एकाएक बोल उठा- भाभी, मैं अब बड़ा हो गया हूँ, मुझे बच्चा न कहें और इतना कह वह झटके से पलंग से उठा और बाहर की ओर चला गया। और माया इसे एक आश्चर्यचकित भाव लिए अवाक् देखती रह गई...।

दंश-सुख

सुबह सवेरे-सवेरे महरी काम करने आ पहुंची थी। मैंने माँ से कहा था- माँ आज चाय तुम्ही बनाओ, क्योंकि चाय तुम बहुत अच्छा बनाती हो। इसमें कोई दो राय भी नहीं। माँ की एक विशेष खासियत है कि अपनी प्रशंसा सुन वह पल भर भी बैठ नहीं पाती। वह अपनी प्रशंसा से इतनी प्रसन्न होती है कि कितनी भी थकावट हो उन्हें, कितनी भी अस्वस्थ हों वह सारे दुःख-दर्द भूल उस प्रशंसा करने वाले के लिए दिल व जान तक लुटा देने के लिए तैयार रहती हैं। ऐसी बात नहीं है कि वह सिर्फ प्रशंसा सुनकर ही अच्छी चाय बनाती है, बल्कि वह खाना भी बहुत स्वादिष्ट बनाती हैं। यह गुण उन्हें अपनी माँ से विरासत में मिली है और उस दिन भी वह चाय बनाकर ले आयी और वाकई हर रोज की तरह उस समय भी चाय बहुत सुंदर बनाकर लायी थी। वह अपनी सारी क्षमता, सारा प्यार उड़ेल कर चाय बनायी थी, इसीलिए चाय का कुछ अलग ही आनन्द आ रहा था। चाय पीने के दौरान वह अक्सर बैठे-बिठाए अपने जीवन के उन प्रसंगों को छेड़ देती है- कब-कब उनकी इस बात के लिए प्रशंसा हुई थी या कब-कब वह उस चीज के लिए तारीफ-ए-काबिल रही हैं। मैं और महरी उनकी इस बात का आनन्द लेती रहती हैं, क्योंकि हर घटना, हर बातों का पिछली बातों से काफी संबंध रहता है।

और इसी खुशनुमा वातावरण में खूबसूरत बातें चल रही थी कि अचानक उनका ध्यान अपने शारीरिक कष्ट की तरफ आ पहुँचा और बातों ही बातों में वह कहने लगी- क्या बताऊं आशा, मैं अपनी बड़ी लड़की के यहाँ बेहद आराम में थी, जब से अपने शहर लौटी हूँ, न जाने क्यों मेरी तकलीफ फिर बढ़ती जा रही है। तुम तो जानती ही हो कि यह सब मुझ पर एक तांत्रिक प्रभाव के कारण है। मैं इस तंत्र-मंत्र से तंग आ गई हूँ पर करूं या जब तक वह मेरा पीछा नहीं छोड़ेगी मैं निश्चिंत होकर जी नहीं पाऊंगी। अब देखो न मुझे धनबाद में किसी तरह का

शारीरिक कष्ट नहीं था। वहाँ मैं बेहद आराम से थी और यह कहते-कहते उनके चेहरे पर दर्द की पीड़ाएं उभरने लगी। उनके चेहरे पर अभी से कुछ देर पूर्व जो एक मुस्कान थी (अपने किए गए तारीफ पर) वह अचानक विलुप्त हो गया। मैं उनकी पीड़ा को महसूस कर उनके प्रति सहानुभूति से भर गई। अचानक ही मैं बोल उठीं- तो इसमें चिंता करने की क्या बात है तुम अपने सारे जमा पैसे बैंक से निकाल लो और अपनी संतुष्टि प्राप्ति तक अपना सारा इलाज बड़ी बेटी के घर धनबाद में ही कराओ। महरी हमलोगों की बातें बड़े ध्यान से सुन रही थी और उसने भी लगभग यही सलाह माँ को दी। पर बात वहीं खत्म नहीं हुई। वह अपनी और कई समस्याओं को लेकर बैठ गई- कहने लगीं तो क्या पैसा इतनी आसानी से निकल जाता है जो तुम कह रही हो। अब तक उनके चेहरे पर क्रोध के आवेश का अंश आ रहा था। तो प्रत्युत्तर में मैंने कहा- तो क्या मैं पैसे की व्यवस्था नहीं कर रही तुम्हारे लिए। क्या करूं मैं भी तो यही चाहती हूँ कि तुमको पैसे दूं इलाज के लिए। तो उन्होंने कहा- अरे छोड़ो-छोड़ो आजतक पति ने एक पैसा नहीं दिया तो उसका बाल-बच्चा अब मुझे क्या देगा।

और क्रोध में उनका स्वर और भी तेज हो गया। पर यह स्वर तेज क्यों था इसके पीछे भी एक कारण था। उनका उद्देश्य ही यही था कि उनके पति जो बाहर खाट पर बैठे उनके हाथ की बनी चाय का जो आनन्द ले रहे थे वह भी सुनें। पर क्या अब जो घूंट वह पी रहे थे वह पहले-सा था या उससे अलग। यह बात भी मैं बखूबी समझ रही थी क्योंकि कुछ देर पूर्व वह चाय को चुस्कियां लेकर पी रहे थे लेकिन माँ ने जैसे ही यह बातें उन्हें सुनाने के उद्देश्य से कहीं वैसे ही मैंने देखा वह चाय को गटागट पीकर चाय की प्याली वहीं पटकते हुए तुरंत अखबार उठा बाहर की तरफ निकल पड़े। और माँ इस गर्व से भर उठी थी कि उन्होंने अपनी बातों से आज फिर अपने पति को परास्त कर दिया।

अब माँ का क्या होगा

कामिनी अपने बांये कंधे पर भारी-भरकम बैग को लटकाये और दाहिने हाथ में ब्रीफकेस को लिए जब पटना जाने वाली बस पर चढ़ी तो उसका सारा अंग थकान और दर्द से चूर-चूर हो रहा था। पीछे-पीछे बस पर चढ़ी कामिनी की माँ की भी वही हालत थी। शायद उससे कहीं ज्यादा बुरी हालत। स्वाभाविक भी था। कहाँ कामिनी की उम्र चालीस वर्ष और माँ नहीं तो कम-से-कम सत्तर वर्ष की अवश्य रही होगी। चेहरे पर झुर्रियां साफ-साफ नजर आ रही थी, और थकान की वजह से कुछ और ही ज्यादा।

कामिनी ने बस में अपनी सीट की तलाश शुरू कर दी थी और माँ शायद एक भी मिनट अपने को खड़ा रखने में असमर्थ सामने की एक ही खाली सीट पर एक लंबी सांस मारकर बैठ गई थी। दरअसल वह तीन दिन से लगातार घर में व्यस्त ही तो रही थी। घर को छोड़ने के पहले उसने अपने एक-एक सामानों को एकत्र किया था फिर एक-एक सामान को अलमारी में, बक्से में और संदूक में बंद किया था। जिनके-जिनके पास जो-जो चीजें गई थीं, याद कर-करके उसे ले आई थी और फिर किसको-किसको अपनी पुरानी चीजें दानकर गौरवान्वित होना था, वह सब भी करती रही थी। बुढ़ापे का शरीर तो था ही, थक जाना कोई अस्वाभाविक बात नहीं थी। वह तो बेटी कामिनी के यह कहने पर कि जमालपुर में रखा ही क्या है, शेष जिन्दगी राजधानी के सुख-मौज में काट लेना, माँ ने वह सबकुछ कर लिया था, जो उससे किसी तरह भी संभव नहीं था और चलते वक्त कपड़े तथा अन्य सामानों से ठसाठस एक बैग को कंधे से लटकाये और दूसरे हाथ से कामिनी की तरह एक सूटकेस थाम कर बस स्टैण्ड की तरफ पैदल ही चल पड़ी थी। चार बजे सुबह ही गाड़ी खुल जाती है औ फिर इतने सवेरे किसी सवारी का मिलना कठिन ही होता है मोहल्ले के आस-पास।

कुछ ही समय बीता होगा कि कामिनी माँ के पास लौटी और एक दूसरी ही सीट पर माँ को जमी देख झुंझला उठी- हद करती हो माँ, कहने को कहती हो रिटायर्ड ऑफिसर और बस-ट्रेन में तुम्हारी हालत तो एक गंवारू औरत से भी ज्यादा बुरी होती है। बिना सोचे-समझे जहाँ भी चाहा बैठ गये, चलो उठो तेईस और चौबीस नंबर की सीट हमदोनों की है।

माँ ने कामिनी की झुंझलाहट को साफ महसूस किया था और उसका यह व्यवहार कुछ अजीब-सा भी लगा था लेकिन शायद यह सोचकर कि थकान और परेशानी के कारण ही वह ऐसा व्यवहार कर गई है माँ चुप ही रही। फिर माँ की आँखों में तो राजधानी के फ्लैट, राजधानी के राजमार्ग, राजधानी के होटल आदि के चित्र भी छाये हुए थे। इसी से माँ ने कामिनी की बातों को सहजता में लेते हुए बैगब और अटैची को दोनों हाथों में लिया और उन सामानों से कहीं अधिक अपनी देह को घसीटती हुई तेईस नंबर की सीट पर जाकर बैठ-सी गई। कामिनी भी उसके बगल में ही जाकर इस तरह बैठी जैसे वृक्ष से कोई गिरी हुई भारी चीज मिट्टी में ध ंसकर स्थिर हो गई हो।

सावन का महीना था। कुछ दिन पहले जमकर बारिश हुई थी। फिर पानी के साथ बादल फिर बादल के साथ मौसम की आर्द्रता भी बिल्कुल गायब हो गये थे। उमस वैसे भी माथे पर चढ़कर बोल रही थी। ऐसे में ड्राईवर ने जैसे ही गाड़ी खोलने का संकेत ध्वनि की तो सभी को ऐसा ही लगा जैसे पूरी बस में एक बर्फीली हवा सरसरा कर दौड़ गई हो। गाड़ी अपनी तेज रफ्तार में हॉर्न के साथ भाग रही थी और बस की खुली खिड़कियों से ठण्डी-ठण्डी हवा का झोंका सब की देह में आलस्य और आँखों में नींद भरने लगा था। कामिनी ने बगल में बैठी माँ को देखा- तो उसकी पलकें बंद हो चुकीं थी। उसने एक बार अपने सारे सामानों को देखा था कि वे सुरक्षित तो हैं और फिर अपनी सारी थकान को दूर कर लेने के ख्याल से उसने भी अपनी पलकें बंद कर ली। लेकिन उसके दिमाग में जैसे कुछ कौंध गया। उसने झटके से अपनी आँखें खोलीं और माँ को कनखी से ही बड़े गौर से देखा- जो अब तक थकान के कारण सचमुच में ही सो रहीं थी। कामिनी ने इसे जान लिया था। दरअसल माँ जब अपनी गहरी नींद में होती है तब वह लेटी रहे या बैठी रहे, खर्राटे की आवाज जरूर करती है और यही उसकी गहरी नींद की पहचान होती।

खर्राटे की आवाज सुनकर कामिनी को बेहद गुस्सा आया- बस पर बैठे पैसेंजर भला इस औरत के बारे में क्या सोच रहे होंगे? समझते होंगे एकदम गंवार जंगली इस वी॰आई॰पी॰ गाड़ी पर सवार हो गई है। कामिनी का गुस्सा एक क्षण के लिए काफी तेज हो गया था, माँ के रहन-सहन के व्यवहार को स्मरण कर। इसके

पहले भी माँ जब उसके साथ पटना गई थी, तब वहाँ वह अपनी देशी भाषा में ही पड़ोसी से बातें करना शुरू कर दी थी, वह तो मैंने तुरंत घर भेज देने की धमकी दी तो अपनी आदत में सुधार ले आयी। लेकिन ठहरी तो आखिर गाँव की ही, गंवारू आदत कैसी जाएगी। घृणा से कामिनी की नाक सिकुड़ गई थी, लेकिन कुछ सोचकर ही वह मौन रही थी कि माँ की नींद अगर उचट गई तो?

उसने आहिस्ता से नीचे रखी अटैची उठाई और धीरे से उसे अनलॉक करते हुए एक-एक करके अंदर के सारे कागजात को देखा था। बड़ी तेजी के साथ। और यथास्थान पर रखे दस्तावेज को देख कर वह निश्चिंत-सी हो गई थी। उसने अटैची को धीरे से बन्द किया था और फिर माँ की जांघ पर चुटकी काटती हुई खा जाने वाली आँखों से देखा था- माँ ने जब हड़बड़ा कर आँखें खोली तो उसके चेहरे को देखते ही वह समझ गई कि वह जरूर ही अपने नींद में खर्राटे ले रही होगी, वह संभल कर बैठ गई थी।

कुछ देर के लिए बस में जैसे एकदम-से खामोशी छा गई थी, जैसे अगर खामोशी नहीं थी, तो माँ के खर्राटे लेते रहने के कारण। गाड़ी सड़क पर सपाट भागी चली जा रही थी। आगे-पीछे एक लय में तेज आवाज करती हुई। कुछ क्षण के लिए मौन रहने के बाद कामिनी ने माँ को टोका था- "माँ, चलते वक्त भाभी बाहर आई तक नहीं। पिताजी खैर... लेकिन भैया तो ऐसे नहीं थे।" यह कहते ही उसके चेहरे पर दुःख की छाया सघन हो गई थी। और उस छाया को दूर करने के लिहाज से माँ ने कहा था- अच्छा ही हुआ अपशकुन होने से बच गया। माँ की आवाज में सचमुच में घृणा थी- लेकिन कामिनी ने कहा था- अच्छा नहीं हुआ। लेकिन नहीं सामने हुए तो इसमें उन लोगों का ही क्या दोष है। मैंने उनसे कहा ही कहाँ था कि मैं कल ही सुबह की गाड़ी से घर को रवाना हो जाऊंगी। एक बार मन में हुआ भी था कि कह दूं, लेकिन फिर क्या हुआ मन में नहीं कह पायी। ये बातें कामिनी मन-ही-मन में सोचा और उसने अपना सिर अपनी सीट के पीछे टिका लिया था। आँखें प्रयत्नपूर्वक बंद कर ली थी और फिर बीते पच्चीस रोजों की सारी बातों को एक-एक कर यार करने लगी थी। याद क्या करने लगी थी- याद आने लगी थीं। तीन महीने पूर्व जब वह अपने मायके आई थी तो इसी जमीन को लेकर किस तरह हो-हंगामा हो गया था। तब भैया-भाभी तो एकदम मौन थे। पिताजी ही कहाँ कुछ बोले थे- बोल रही थी तो बस छोटी बहन भामिनी। देवर ने भी कुछ आपत्ति नहीं उठाई थी। उठाता भी होगा तो सूने में। पत्नी को आगे कर देता होगा। हाँ, किसी भी लड़ाई में पत्नी ही सबसे अच्छा ढाल हो सकती है। मेरे पति ने ही क्या किया- ढाल ही तो बनाया। सारी लड़ाई के बीच में ही तो केन्द्रित हो गई। अपने तो इस

तरह साफ-सुथरे निकल गये, जैसे उनको इस जमीन से कुछ लेना-देना ही नहीं हो। उस बार जब मेरे साथ यहाँ आये थे, तो भामिनी से किस तरह मुस्कुराते हुए यह कहते हुए निकल गये थे- "भामिनी, तुम तो सबसे पहले मेरी साली हो और फिर अब तो भभव भी हो, मैं इस जमीन को थूकता हूँ, अब तो मन का बैर मिटाओ। "

जाहिर है, इस बात से भामिनी ने ही क्या सोचा होगा- जमीन हड़पने की इच्छा दीदी की है, जेठ को झूठ-मूठ का सामने ला रही है। और इस बार जब मैं उनके साथ पटना लौट गई थी, तब किस कदर मुझे बच्चे की तरह फुसलाते हुए कहा था- "अरे तुम समझती नहीं हो कामिनी, वह तो मैंने भामिनी को वैसे ही जमीन पर थूकने की बात कह दी थी, तुम्हें मालूम भी है उस तीन कट्ठे जमीन की कीमत आज के दिनों में ही क्या होगी- आठ लाख रुपये। सोचो, अगर उस जमीन को किसी तरह हमलोगों ने हासिल कर लिया तो पांच लाख और मिलाकर इस पटना की खास जगह पर अपना एक फ्लैट होगा। बस माँ को किसी तरह अपने पक्ष में बनाये रखो। यह राजनीति की बात है और राजनीति में कुनीति भी नीति होती है। माँ से कहती रही हो कि मैं उनको कितना सम्मान देता हूँ। बेटे से भी बढ़कर और तुम उनकी पतोहू से भी ज्यादा बढ़कर मानती हो। माँ के मन में बस यह भय पैदा करती रहो कि वह वहाँ मरेगी तो लाश को उठाने वाला भी कोई नहीं मिलेगा। बस उस घटना को गाहे-बगाहे याद कराती रहो कि किस तरह, जब वे कुएं पर बाल्टी उठाते हुए गिर पड़ी थी और वह बेड पर पड़ी-पड़ी भगवान को सुमरती रही थी लेकिन किसी ने भी उसकी रात-दिन जगकर सेवा नहीं की थी और फिर सेवा की तो उसकी कामिनी बेटी ने ही, और वह ठीक हुई तो कामिनी बेटी से ही। बस समझो- वह जमीन अपने हाथ में है और वह जमीन अपने हाथ में हुई तो तुम मोहल्ले में किरायेदारिन कहकर नहीं पुकारी जाओगी, बल्कि मकान मालकिन कही जाओगी, मकान मालकिन।" और उनकी बातों में सचमुच मुझे दम लगा था और उसी रात मैंने माँ को फिर टेलीफोन किया था। एकदम कोर्ट शैली में बातें हुई थी। माँ ने मुझे बुलाया था और मैंने तीसरे ही रोज वहाँ पहुँचने की बात कहकर टेलीफोन रख दी थी।

कामिनी को स्मरण है कि वह जब अपने मायके पहुँची थी, तो किस तरह पूरे घर में एक खलबली-मच गई थी और कुछ ही दिनों के बाद से उसने यह महसूस करना शुरू कर दिया था कि इस बार वह अपने घर में एक बेटी, बहन और एक भाभी बनकर नहीं आई है, एक कोई अज्ञात मगर निश्चित और खतरनाक रोग की तरह घर में चली आई है और इसी कारण घर के सारे लोग उससे बचने की कोशिश करने लगे थे। बस एक माँ थी, जो मेरे आगे-पीछे छाया की तरह इस एक महीने

तक साथ रही। सच्चाई तो यह थी कि उस घर में मैं महीने भर में इतनी परेशान और शायद अपने से ही भयभीत रही कि किसी को उसके संबोधन से भी नहीं पुकार पाई। जैसे उस घर में सारे लोग मेरे लिए अजनबी थे, और मैं सबके लिए अजनबी बन गई थी।

जैसे कोई नन्हीं बच्ची माँ के पीछे-पीछे ही लगी रहती है, बस वही हालत हो गई थी मेरी। नीचे वाला अंधेरा कमरा, जो माँ के लिए था, उसी कमरे में मुझे भी रहना होता था, माँ के साथ ही । न रोशनी न हवा। अब मैं सोचती, माँ सचमुच में कैसे इस रूम में अपने जीवन के इतने सालों को गुजार गई होगी। बगल से नाले और शौच की आती दुर्गंध, ओह! मैं तो महीने भर में ही तंग आ गई थी, लेकिन लोभ आदमी को क्या-क्या न सह जाने के लिए मजबूर कर देता है। मैं भी चुपचाप सह गई थी सबकुछ। माँ हमारे दुःख से और भी दुःखित हो रही थी और घर में सारे लोगों का क्रोध इतना ही चरम पर चढ़ गया था। तब मुझे रात-दिन बस यही लगा करता कि जैसे घर का सारा आदमी मेरी हर सांस पर निगरानी रख रहा है। ...आखिर क्यों नहीं रखता। मैं भी तो सही पर नहीं थी। कुछ इस तरह से टेलीफोन पर अपने काका से बतियाती थी, जैसे इसकी जानकारी मैं अपनी सांसों को भी नहीं देना चाहती थी। मैं समझ नहीं पा रही हूँ कि अगर मैं गलत थी तो काका और काकी ने ही मेरे इस कदम का समर्थन क्यों किया। आखिर काका तो मेरे पिताजी के अपने खून हैं, पिताजी को भी उनसे कितना मोह है। रोज साइकिल पर जब तक उनके घर का एक चक्कर नहीं लगा आते, उनको चैन नहीं, उनके ऐश्वर्य और शान-शौकत की बड़ाई करते थकते नहीं। तब काका ने इस बात को पिताजी से छुपा ली। हो सकता है कोई भीतरी घात हो, जिसे पिताजी भी नहीं जानते। और माँ के नाम की यह जमीन मेरे नाम से रजिस्ट्री कराने में उन्होंने इसीलिए मदद की हो कि उनका विरोध संतुष्ट हो जाए। लेकिन शायद उन्हें भी अब यह मालूम हो गया होगा कि ऐसा करके काका ने उस अजनबी जगह में अपने खून के बीच ही एक ऐसी खाई बना ली है, जिसके आर-पार खड़े हुए दोनों अब कभी नहीं मिल सकते। अगर काका ने यह सोचा होगा कि रजिस्ट्री का काम बहुत चोरी हुआ है, और हुआ भी था, लेकिन पिताजी से इस जगह कोई बात छिपी नहीं रह सकती है, जो रह जायेगी। यह काका ने समझ कैसे लिया। जिस दिन एकदम चोरी-छिपे जमीन की रजिस्ट्री हुई थी, उस रात को पिताजी ने कुछ ऊँची आवाज में भामिनी से कहा था- (जिसे मैं और माँ भी सुन सकूं)- कि, भामिनी, तुम्हें काकी ने मिठाई नहीं भेजी। आज तो तुम्हारे काका के यहाँ पचास किलो लड्डू बाँटे गए हैं... और फिर इसके बाद घर में जो एक उदास सन्नाटा और चुप्पी फैल गई थी, उसमें मेरा रहना एकदम से संभव नहीं रह गया था। मैंने माँ से

कहा था- माँ, तुम यहाँ रहना चाहो तो रह सकती हो, लेकिन मैं एक पल के लिए भी नहीं रह सकती। तब माँ ने अपनी आँखों में एक और भी भारी भय को भरती हुई कहा था- यहाँ मैं ही कैसे रह सकती हूँ, मेरा तो अब जो कुछ है बस तुम हो और उसी क्षण माँ ने अपने सारे सामानों को जहाँ-तहाँ से बटोरा था। उन्हें बक्से और संदूकों में बंद किया था और कान में शाम के समय पूजा के बाद कहा था- बेटी, हमदोनों एकदम मुँह अंधेरे यहाँ से निकल जायेंगे। ये बात कल की ही तो है। रात को माँ का चेहरा कितना रूआँसा हो गया था, शायद यह सोचकर कि इस घर से हमेशा-हमेशा के लिए संबंध टूट रहा है। बच्चों से पति से, माँ यह भी सोच रही होगी कि क्या हुआ हम पति-पत्नी आपस में लड़ते ही तो थे, लेकिन आमने-सामने रह कर ही तो। लेकिन आज से मेरा वह भी सुख हमेशा के लिए छिन रहा है- मैंने माँ को अपने आँचल से आँख के कोरों को छुपाकर पोंछती हुई देखा था।

कामिनी ने अपनी गर्दन थोड़ी-सी बायीं ओर की थी, माँ को देखने के लिए। उसे लगा था कि शायद यह सब हो जाने में कहीं से वो ही सबसे बड़ी अपराधिनी थी। माँ को पिताजी से हमेशा के लिए अलग कर देने का अपराध उसी के माथे पर था, इसी से उसने चोर निगाहों से ही माँ की ओर देखा था- माँ का सर अब खिड़की के शीशे से सटा हुआ था। हाँ, खर्राटे की आवाज नहीं हो रही थी, लेकिन नींद जरूर आ गई थी। कामिनी ने माँ के चेहरे को बड़े गौर से देखा था। उसे लगा था- जैसे रात भर में ही उसके चेहरे पर झुर्रियों का जंगल उग आया था। वह एक क्षण के लिए भीतर से सिहर गई। फिर शायद अपने को संतुलित करने के ख्याल से ही वह सीधी होकर बैठ गई थी और खिड़की के बाहर की ओर देखा- गाड़ी कहाँ पर है? कामिनी ने बगल की सीट पर बैठी महिला से पूछा था।

- उस महिला ने उत्तर में बताया था कि बस अभी सिटी के आस-पास है।

अब तो हमलोग पटना आ पहुँचे, कामिनी ने अपने आपसे ही सवाल किया था और उसने माँ को आहिस्ता से जगाते हुए कहा था-माँ, जागो हम लोग पटना पहुँच रहे हैं। माँ इस तरह से अचकचा कर सावधान हो गई थी, जैसे कोई बहुत बड़ी अनहोनी बात हो गई है और फिर सीट पर ही बैठे-बैठे अपने सारे सामानों को देखा था- एकाध को अपने नजदीक भी कर लिया था, जैसे उतरने चढ़ने की आपाधापी में कोई उसके सामान को इधर-उधर न कर दे।

बस लगभग दस बजे पटना पहुँची थी। कामिनी ने चाहा था कि वह स्वयं ही बैग और ब्रीफकेस को अपने हाथों में उठा ले लेकिन माँ ने उसे ऐसा करने नहीं दिया था और यह कहती हुई कि- "भारी बोझ है बेटी, अकेले नहीं उठा पाओगी" और उसने अपनी अब तक टूटती देह के बावजूद भारी बैग को अपने दोनों हाथ

से उठाकर कमर पर रख लिया था। कामिनी को विश्वास था कि उसका पति देवव्रत बड़ुवा अवश्य ही उसे लेने के लिए बस स्टैण्ड आया होगा, उसने घर से निकलने के दिन ही अपने पति से कह भी दिया था कि वह किसी भी दिन इस गाड़ी से चलकर पटना आ-जा सकती है।

इसी से रोजाना अवश्य ही वह गाड़ी को देख आया करे। लेकिन कामिनी ने जब देवव्रत को वहाँ नहीं देखा था तो जैसे उसका सारा बचा-खुचा उत्साह और उसकी खुशी ही शेष हो गयी थी। उसने एक ऑटो रिक्शा ठीक किया था और उसमें अपने सामानों को लादने के बाद माँ को एक ओर बिठाया था और जब गाड़ी चली थी तो कामिनी का एक मन हुआ जैसे वह ऑटो ड्राइवर से कहे कि जमालपुर तक फिर लौटा ले जाने का क्या भाड़ा लेगा। उसने मन-ही-मन सोचा, कितना लेगा-ज्यादा से ज्यादा हजार रुपया! वह यह भी दे देगी। लेकिन देवव्रत के द्वारा उसकी की गई उपेक्षा उसे सहन नहीं हो सकती है। लेकिन तभी उसे इसका स्मरण हो आया था कि किस तरह उसके मायके के पिछवाड़े में ही उस औरत का गला टीप कर फेंक दिया गया था। दूसरे दिन अखबार में छपा था कि कुछ गुण्डों ने शाम के समय सड़क से उसे खींच लिया था और उसके साथ अनैतिक कर्म के बाद उसका गला दबा दिया था। इस घटना का स्मरण होते ही कामिनी सर से पांव तक सिहर उठी। सुबह-सुबह ही खबर फैल गई थी। उसे एक क्षण के लिए उस दिन के उजाले में ही लगा था कि कहीं कोई उसका पीछा कर रहा था और उस समय तो वह सचमुच में एकबारगी ही चौंक उठी थी, जब ड्राइवर ने गाड़ी रोककर उससे पूछा था- कौन से नंबर के फ्लैट पर पहुंचना होगा बीवीजी। कामिनी का सारा बदन ही पसीने से चुहचुहा आया था। माँ ने यह सब नहीं देखा था। उसने अपने पसीने को साड़ी के छोर से पोंछा था और सिर्फ इतना भर कहा था- ग्यारह नंबर।

ऑटो गाड़ी ग्यारह नंबर पर रुका था। नौकर ने मालकिन को देखा था और दौड़कर सारे सामानों को लेकर ऊपर चला गया था और कामिनी ने माँ को सहारा दिया था और उसके साथ ही लिफ्ट से अपने क्वार्टर में पहुंच गई थी। देवव्रत द्वार पर खड़ा अपनी पत्नी कामिनी का बेसब्री से इंतजार कर रहा था और जब कामिनी को माँ के साथ देखा तो उसे सारी बातें समझते देर न लगी। देवव्रत के चेहरे पर अचानक ही अनदेखी खुशियों की चमक लहरा गई थी। कामिनी के मन में कुछ उठ रहा था- वह कुछ कहना चाह रही थी। लेकिन देवव्रत जैसे कुछ भी सुनने को तैयार न था। उसने अपने दोनों हाथों से कामिनी की बांहों को पकड़ते हुए कहा था- तुम कुछ नहीं बोलो, तुम जो कुछ भी कहना चाहती हो, मैं वह सब जानता हूँ। डार्लिंग-आज तुमने मेरा साथ नहीं दिया होता, तो मैं जिन्दगी की इतनी बड़ी बाजी बिना

किसी परिश्रम के जीत भी नहीं सकता था। जीतने की बात भी नहीं सोच सकता था। तुम नाराज तो नहीं हो कि तुम्हें बस स्टैंड से यहाँ तक अकेले चलकर आना पड़ा। दरअसल डार्लिंग जबसे तुम माँ के पास गई, तब से ही मैं उस मुंबई वाले फ्लैट को खरीदने के चक्कर में दिन-रात व्यस्त रहा और तुम्हारे आने से दस मिनट पहले गोवर्धन जालान ने मुझे छोड़ा था। लेकिन तुम्हें यह जानकर बेहद खुशी होगी कि फ्लैट अब हमदोनों को निःसंदेह मिल जायेगा। हम रजिस्ट्री की हुई जमीन को पांच-छः रोज के अंदर ही बेच देंगे। पांच-छः लाख तो मिल ही जायेंगे और फिर अपनी कमाई की रकम है, पन्द्रह रोज के अन्दर बंबई वाली फ्लैट ले ही लेंगे। फ्लैट में दो कमरे हैं, किचन बाथरूम अलग से। हमलोगों को और चाहिए क्या? एक में हम दोनों और एक में हमारे बच्चे।

"लेकिन माँ का क्या होगा?" कामिनी ने अनजाने भय से भयभीत होते हुए पूछा था- और इस पर देवव्रत ने उतनी ही उपेक्षा और सहजता से कहा था- डार्लिंग, तुम भी कभी-कभी अपनी माँ की तरह बन जाती हो- एकदम गंवार किस्म की औरत। भला माँ हमलोगों के साथ बंबई में क्या करेगी। अब तो उनकी उम्र अपने पोते, अपनी बहू और जैसे भी हो पति के साथ रहने के लिए है, यही उनका सुख भी है और तुम्ही कहो, हमलोग उनकी उम्र का यह सुख इनसे क्यों छीनें।

- "लेकिन..."

- "ये लेकिन-वेकिन का झमेला छोड़ो। मैं अपनी कार से उन्हें जमालपुर भेज दूंगा। नौकर साथ में जायेगा। कोई तकलीफ नहीं होगी। और तुम्हें यह बहुत बुरा लगा तो स्वयं मैं पहुंचा दूंगा। लेकिन सच पूछो तो इस छोटी-मोटी बात के लिए मुझे एकदम फुर्सत नहीं है। अब तुम्हारा एक काम और बाकी रह गया है, जिस तरह माँ को अपने पक्ष में करके उनकी जमीन को अपने नाम से करवायी हो, अब किसी तरह उन्हें राजी कर उन्हें घर जाने के लिए भी तैयार कर दो। मैं आज ही आज के प्लेन से जालान साहब के साथ बंबई निकल जाऊंगा।" इतना कह देवव्रत बाहर निकल गया था। माँ अब भी बाहर वाले कमरे में बैठी अपने बैग से एक-एक उन चीजों को बाहर कर रही थी, जिसे उसने अपने घर से जैसे-तैसे समेट कर लायी थी। कामिनी बहुत थके-थके पांव से माँ के करीब आयी थी और बाहर निकाले गये सामानों को पुनः एक-एक कर माँ के बैग में रखने लगी थी। यह कहती हुई- "माँ इन सामानों को इतनी जल्द बाहर निकालना क्या जरूरी है, इसे बैग में ही अभी रहने दो न। उठो थक गई होगी, पहले फ्रेश तो हो लो।"

माँ ने अपनी आँखों में अपार ममता भरकर कामिनी को देखा था पर कामिनी माँ को बिना देखे ही उठी थी और अपने बेडरूम में आकर निढाल-सी होकर बिस्तर

पर गिर गई थी।

रूद्रदत्त बाबू का बसन्त

सुई की टिकटिक जब चार के हथौड़े मारती है, वैसे ही रूद्रदत्त बाबू यानि कुमार बाबू अपना बिछावन छोड़ देते हैं आजतक इस कार्यक्रम में कभी भी एक मिनट का हेर-फेर नहीं हुआ है। न एक मिनट आगे न एक मिनट पीछे। शायद यह नियति की तरह अटल और सत्य है कि किस तरह दिन के बाद रात होती है और रात के बाद दिन; ठीक उसी तरह कुमार बाबू के जीवन में भी दिन-रात आते-जाते रहे। परन्तु नियम के पक्के वह अपने नियम से कभी भी विमुख नहीं हुए। वह भी सिर्फ पेड़-पौधों के लिए, बाकी ड्यूटी में कभी भी खरे न उतर पाते हैं।

सुबह चार बजे उठते ही वह अपने बगान का बारीकी से अध्ययन करते, मानों वह कोई बोलती चीज हो। उनके सुखःदुख का अकेला साथी था वह। किस पौधे को क्या दुख है और क्या सुख, इसका आभास सिर्फ कुमार बाबू को ही था। बच्चों की तरह इसका लालन-पालन करते थे। कब किसे सहलाना है, कब किसे डांटना है, कब किसे प्यार देना है यह सिर्फ बच्चों के पिता को ही ज्ञात हो सकता है, अन्य किसी को नहीं।

ऐसा नहीं था कि कुमार बाबू की पत्नी सुशीला देवी को बगान अच्छा नहीं लगता था, परन्तु अपने बच्चों से भी अधिक प्यार पेड़-पौधों को देना उन्हें शायद अखर जाया करता था। सुशीला देवी पढ़ी-लिखी समझदार पत्नी थी। वह अपने पति के बगीचे से प्यार तो करती थीं लेकिन एक सीमा तक। जब उनके अपने बच्चे तिरस्कृत होते तो सुशीला देवी उस बगीचे के पेड़-पौधों से बेहद नफरत भी करने लगती थीं लेकिन अपने पति की नियति की सच्चाई से मुँह नहीं मोड़ पाती थी। वैसे यह भी सच था कि नाराजगी के क्षणों में भी वह पेड़-पौधों में पानी डालना नहीं भूलती थी।

कुमार बाबू जानते थे कि उनका यह कृत्य सारे शहर में मशहूर है। कोई भी व्यक्ति नर्सरी के लिए उनके पास आता। इस गर्व से कि उनकी नर्सरी पूरे शहर

में विख्यात है। लोगों को लंबे-चौड़े व्याख्यान से अभिभूत भी करते रहते। कुछ तो सही मायने में इनके प्रशंसक थे पर अधिकांश अपने फायदे के वशीभूत उनकी व्यर्थ की बातों को भी बड़े चाव से सुनाने का ढोंग करते, जिसे कुमार बाबू के लिए समझना मुश्किल था। उनके लि तो यही बहुत बड़ी बात थी कि उसके पास उनके प्रशंसकों की भारी भीड़ है।

पर पत्नी सुशीला देवी थी कि उनके व्यर्थ के इस भाषण से बेहद क्षुब्ध रहती, लेकिन पति के इस हरकत को बर्दाश्त कर जातीं। वह रोज-रोज एक साथ बातें करने के बहाने कुछ समय निकाल कर उनके पास बगान में जा पहुँचती; उद्देश्य सिर्फ एक ही होता था, उन्हें समझाना- "क्या करेंगे आप इस पेड़-पौधों के पीछे अपनी जान देकर। कभी बेटे-बेटी के भविष्य की भी चिंता कर लिया कीजिए। अब देखिए सुरेश ने इस वर्ष किसी तरह आई॰एस॰सी॰ कर ली है। मेरे पिताजी की बड़ी इच्छा है कि उनका नाती डॉक्टर बने। पिताजी की बचपन से ही यही आकांक्षा रही कि उनके परिवार का कोई भी नाती या पोता डॉक्टर बने।

क्यों जी, आप उसके लिए प्रयास करेंगे न? मैं नहीं चाहती हूँ कि मेरा बेटा कोई और कार्य करे। मेरे ननिहाल खानदान में सारे भाई-भतीजे पढ़े-लिखे हैं।" आखिर कुमार बाबू जवाब दे भी तो क्या दें। जवाब देने का अर्थ है कि उनके पिता यानि अपने श्वसुर की प्रशंसा में लंबी बातें कहें। कुमार बाबू ने एकाध बार ऐसा करना चाहा भी कि उनकी हाँ में हाँ मिलाये लेनि तब अचानक ही उसके मुँह से पेड़-पौधें की प्रशंसा में वाक्य मंत्रों की तरह अनायास ही झरते गये थे, जिन्हें सुनकर सुशीला देवी ने यही मान लिया था कि ये सारी बातें इसीलिए होती है कि उसे किसी तरह जलाया जाए।

यह बात सुशीला देवी ने कुमार बाबू से खुलकर एक दिन कह भी दी थी और शायद तभी से कुमार बाबू अपनी पत्नी के सवालों का कुछ भी उत्तर देना नहीं चाहते। न देते ही थे। अपने प्रशंसकों से जब भी वह अलग होने यानि कि अलग होना पड़ता तो अपने पेड़-पौधों के करीब पहुंच जाते, किसी सिखाये हुए या मंत्रसिक्त मंत्र से बंदी बालक की तरह, यह भी नहीं था कि कुमार बाबू अपनी पत्नी के करीब जाना नहीं चाहते थे। याकि उनसे उनको घृणा थी। उन्होंने अपने मन में ऐसा सोचकर भी देखा था। कुछ देर के लिए नहीं, बल्कि घंटे-घंटे भर सभी तरह के गहरे सोच-विचार और उन्होंने यह पाया था कि वह अपनी पत्नी को बेहद चाहते हैं, जितना कि कोई एक पति अपनी पत्नी को चाह सकता है।

लेकिन कुमार बाबू इस बात से अवश्य परेशान रहा करते थे कि सुशीला देवी आखिर उससे इतनी उखड़ी-उखड़ी क्यों रहती है? उन्होंने कई बार यह अंदाजा भी

लगाया था कि पेड़-पौधों से इस तरह से उलझे रहने के कारण ही वह मुझसे इतनी नाराज रहती है- लेकिन इसी कारण अगर उसकी नाराजगी है, तो फिर सुने में इन पेड़-पौधों से वह प्यार क्यों करती है? इनमें पानी क्यों डालती है? मेरी अनुपस्थिति में इसके करीब क्यों बैठती है और जब कभी यह सवाल कुमार बाबू के दिमाग में उभर आते तो वह सुशीला देवी के बारे में सोचने के बजाय अपने पेड़-पौधों के बारे में सोचने लगते। तो फिर सोचते भी चले जाते इस हद तक कि उनके लिए दुनिया में कहीं कुछ भी नहीं रह जाता- सुशीला देवी तक नहीं।

उस दिन भी कुमार बाबू अपने प्रशंसकों के बीच से लौटकर बगीचे के पेड़-पौधों के बीच खिल ही रहे थे कि सुरेश ने दौड़कर आते हुए कहा- बाबू जी कविता की कमर में जोरों की पीड़ा हो रही है और फिर उसके घर में कोई है भी नहीं, दर्द के मारे वह चीखी जा रही है, सन्नो ने आकर यह सारी बातें बतायी हैं।

सुरेश की बातें सुनकर कुमार बाबू किसी स्प्रिंग की तरह उछलकर खड़े हो गए और पूछा- तुम्हारी माँ कहा है और सुरेश यह सुनकर कि सुशीला देवी कविता के घर की ओर ही गई है, उन्होंने भी झटपट अपने कपड़े अपने बदन पर डाले और लगभग कविता के घर की ओर दौड़ पड़े। सचमुच में कविता की चीख हृदय को हिला देने वाली थी। कुमार बाबू ने एक रिक्शा ठीक किया और पत्नी सुशीला को उसके साथ चढ़कर अस्पताल पहुंचने की हिदायत देकर स्वयं साइकिल लिए अस्पताल की ओर हवा हो गये।

उस दिन रात-रात भर जागते रहे थे कुमार बाबू। अस्पताल में जिस कमरे में कविता थी, उस कमरे के ठीक बाहर सुशीला देवी को यह कहकर घर भेज दिया था कि जाओ घर में बच्चे अकेले हैं। सुरेश बड़ा हो गया हो तो क्या वह भी तो बच्चा ही ठहरा। मैं यहां हूँ तो किसी बात का डर नहीं, तुम बस यही समझो कि कविता का पिता ही यहाँ है और सचमुच में कुमार बाबू ने रात आँखों में काट दी थी।

सुबह जब सुशीला देवी अस्पताल पहुँची थी तब कविता की कमर की पीड़ा खत्म हो गई थी। वह गहरी नींद में सोयी हुई थी लेकिन खतरे से बिल्कुल बाहर हो गई थी। सुशीला देवी कविता के करीब आकर फिर अपने पति के पास लौट आयी थी एकदम करीब। उसकी आँखों के कोरों में आँसू के कण उभर आये थे, वह बिल्कुल खामोश थी। पर उस खामोशी में प्रायश्चित का भारी बोझ था और एक सवाल भी कि मैं गलत ही समझती रही कि तुम्हारे सीने में बच्चों के लिए कोई मोह नहीं, अगर कुद मोह है तो वह खामोश पेड़-पौधों के लिए। एक प्रश्न करूं उत्तर दोगे कि अचानक तुम्हारे सीने में बच्चों के लिए यह प्यार कहाँ से उमड़ आया?

और जिसके उत्तर में ही कुमार बाबू ने सुशीला देवी के हाथों को हाथ में लेते

हुए कहा था- सुशीला, तुम यह मत समझो कि मेरे सीने में बच्चों के प्रति मोह नहीं है। तुम जितना अपने बच्चों को चाहती हो, उससे कम नहीं मैं उन्हें चाहता हूँ। जब कभी मैं अपने पेड़-पौधों को प्यार करता हूँ, उनमें पानी देता हूँ तब तुम नहीं समझोगी कि वे पेड़-पौधे मुझे अपने बच्चों के प्रति कितना आसक्त करते हैं। सच पूछो तो मैंने अपने बच्चों से प्यार करना भी बगीचे के अपने उन्हीं पेड़-पौधों से प्यार करके सीखा है। समय आयेगा तो तुम स्वयं सबकुछ समझ जाओगी। सुशीला देवी ने तब देखा था कि कुमार बाबू की आँखों में छोटे-छोटे पौधे उग आये थे, जिस पर गुच्छे-गुच्छे फूलों के खिले थे, जैसे दुनिया भर का बसंत उनकी आँखों में उतर आया हो।

सरजू का सूरज डूब गया

सुबह से जो बारिश होना शुरू हुआ, तो रुकने का नाम ही नहीं ले रहा था। शाम होने वाली थी और बारिश वैसी की वैसी ही। पहले तो गली में पानी भरा और फिर देहरी के नीचे से पानी ऊपर उठने लगा। पानी जब देहरी तक चढ़ आया तो उसे अपने केले के खेत की याद आई। कहीं गाछ गिर तो नहीं रहे होंगे? कुछ नहीं कहा जा सकता। जिस तरह सुबह से ही पानी अपना राकसी रूप दिखा रहा है, उनमें कुछ भी होना असंभव नहीं है।

भयंकर वर्षा और वर्षा की तरह ही तेज हवा। सरजू ने इस तेज हवा के कारण कई पेड़ों को अपने दरवाजे के सामने उखड़ते देखा है। हरहरा कर धरती पर गिरते। फिर केले के गाछ की क्या बिसात। तेज हवा की एक सांस में ऊखड़ जाते हैं, केले के गाछ। सरजू के लिए यह जानना आसान है। पांच वर्षों से वह केले की खेती ही कर रहा है और इस बीच में एक-दो बार उसे एक विपत्ति का सामना भी करना पड़ा है।

तीसरे साल की ही तो बात है, कनिया नक्षत्र था। ऐसी बारिश हुई थी कि केले की आधी फसल नष्ट हो गई थी, जिसकी क्षति-पूर्ति वह आज तक नहीं कर पाया है। एक बार तो उसके मन में आया था कि वह इस धंधे से हाथ ही हटा ले। बेकार का धंधा है यह। सरजू सोचता है- लगे केले के वृक्ष का उखड़ना, जवान बेटे के मरने से कम नहीं होता। तीसरे साल जब उसके खेत के गाछ गिरे थे, तब उसे ऐसा ही लगा था।

यह सच है कि अगर सरजू को महाजन का ऋण नहीं चुकाना होता और अपनी छोटी बहन के हाथों को पीला नहीं करना होता, तो वह केले की खेती में हाथ नहीं डालता। एकदम नहीं डालता। उसने अपने मन में यह संकल्प कर ही लिया था। लेकिन जब कभी वह महाजन को मुस्कुराते हुए देखता, तो उसकी आत्मा

बिल्कुल सिकुड़-पिचक जाती थी। बहन बिलटी को देखता, तो उसे लगता, बिलटी उसे पूछ रही हो- मेरे लिए डोली कब लायेंगे भैया? और नजरें नीचीं कर झटपट आँगन से बाहर हो जाता। इतना ही नहीं था, छोटे भाई की नौकरी की भी तो बात थी। हर महीने यहाँ-वहाँ नौकरी के लिए फॉर्म भरता ही रहता है। नौकरी होना तो दूर की बात रही, एक बार इन्टरव्यू में जाना हो तो पाँच सौ रूपए पार। बाप रे बाप! दिल्ली, मुंबई, आगरा यहीं है। बाप-दादे के जमाने में भी वह नहीं जा पाया- सरजू मन ही मन सोचता है।

छोटा भाई है। मेरी हालत जानता है, इसी से ट्यूशन भी करता है। पर गाँव के ट्यूशन का ही क्या? एक पैसा देता है, तो पाँच मुफ्त में ही पढ़ते हैं। उस पर भी महीने भर में पच्चीस रुपये। यह तो केले की खेती है कि घर भर खाने-पीने के साथ इनिर-मिनिर, तीरथ जातरा का भी रास्ता निकल जाता है। ऐसे में केले की खेती छोड़ी भी कैसी जा सकती है?

पर आज तो यह पछिया राड़ और हरजाई बारिश रुकने का नाम ही नहीं ले रही है। कर्जा-बियान लेकर उसने खेती की भी तो विधि ही बाम हो गया। उसे रह-रहकर शिवचन्नर पर भी गुस्सा आ रहा था, जिसने ही उकसा कर उसे केले की फसल पर पैसा लगवा दिया था- बदमाश है शिवचन्नर, अपने डूबेगा तो मुझे भी लेकर डूबेगा। वह डूबेगा तो क्या? उसका बिगड़ने को भी क्या है, बाप का अकेला बेटा है और यहाँ तो सात भाई, वह तो भगवान की कृपा है कि सातो भाई को कुछ-कुछ है, नहीं तो मिट्टी फांकते नजर आते हमलोग। "अजी, दौड़ों नी, देखो पिछुवाड़ वाली भीत धंसी रहलों छौं। छपाक...छपाक...।"

भीत गिरने की दो बार आवाजें हुई थी। स्पष्ट था कि एक ही बड़े कमरे वाले कच्चे मकान की पिछली भीत दो खण्डों में टूट कर पानी में बिखर गई होगी। सरजू जब तक वहाँ पहुंचा, तो कोठरी की एक भीत गिर जाने के कारण वह बरामदे की तरह दीखने लगी थी। खेत का पानी उचक-उचक कर कमरे में घुसने लगा था। सरजू को कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था कि वह करे तो क्या करे? सरजू की पत्नी रामप्यारी चावल-दाल वाले बोरे को अपनी सारी शक्ति लगाकर बाँस के बने धरन पर रखने की कोशिश कर रही थी। और बिलटी, बिलटी को तो जैसे करंट लग गया हो। कुछ बोल ही नहीं पा रही थी। ठेहुने भर पानी में खड़ी वह, कभी भाभी को देखती थी, तो कभी भाई सरजू को, जो कमरे के अन्दर भू आई एक दीवार को अपनी पीठ और दोनों हाथों को डैने की तरह उसे गिरने से बचाने की कोशिश कर रहा था।

बोरे को धरन पर रखकर रामप्यारी सरजू के पास छपछप करती चली आई थी और वह भी पीठ के सहारे दीवार को रोकने में लग गई थी। पर न जाने कब

पानी ने दीवार की जड़ को खा लिया था और दीवार सहित रामप्यारी के साथ सरजू भी पानी में जा गिरा था।

बिलटी को तब होश आया था। उसने मछली की तरह छलांग मारकर भैया-भाभी को अपने हाथों के सहारे ऊपर किया था। वह तो भगवान का शुक्र कहिए कि उसका मकान कुछ ऊँचे पर होने के कारण पानी वहाँ कमर भर से ऊपर नहीं उठ पाया था। सरजू ने हाथ-पांव को संभाला। कुछ सोचा और इधर-उधर देखा, फिर रामप्यारी और बिलटी के हाथ पकड़े मकबूल या के मजार की तरफ बढ़ने लगा। बढ़ते-बढ़ते ही उसने कहा था- "बचपन में एकबार मेरे मकबूल चाचा ने ही मुझे कोशी में बहने से बचाया था। आज वही फिर तुम दोनों को भी बचाएंगे। मैं जब तक लौट कर नहीं आता, तुम दोनों इसी मजार की जमीन पर बैठी रहना।"

और सरजू उनदोनों को उसी मकबूल चाचा के मजार पर छोड़ दोनों हाथों से पानी को चीरते हुए किसी घड़ियाल की तरह आगे बढ़ता गया था। अपनी उम्मीद और ताकत से बाहर वह रेंगते हुए पंद्रह मिनटों में ही अपने खेत पर पहुंच गया था। मगर उसका खेत कहाँ था, इसका पता ही उसे नहीं चल रहा था। सरजू वहीं पर खड़े एक शीशम के पेड़ से लटक गया था और जाने कितने समय तक वह हाँफता ही रहा था, अपनी बेचैन आँखों से अपने केले के खेत का पता लेता रहा था। लेकिन कहीं पर कोई खेत होता, तब न।

सभी केले के वृक्ष तो पानी के नीचे दब गये थे। कुछ इधर-उधर उपला कर बह रहे थे। बेतरतीब ढंग से, एक-दूसरे से टकराते हुए। अचानक सरजू की नजर रोडस्टार केले के वृक्ष पर पड़ी जो एक ओर उखड़ किसी ताड़ के वृक्ष की तरह पड़ा था।

"अरे यह तो उसका ही खेत है। वह तो अपने ही खेत में पड़ा है" सरजू का कलेजा जैसे एक मिनट के लिए बिल्कुल रुक गया। उसके लंबे-चौड़े खेत के लगभग तीन सौ से अधिक केले के वृक्ष पानी के ऊपर बेजान लाश की तरह तैर रहे थे और उन वृक्षों के बीच उसका रोडस्टार केले का वृक्ष गिरा पड़ा था। सरजू को लगा जैसे उसका कमाऊ पूत ही उसकी गोद में आकर मर गया हो।

"पूत, पूत ही है, वह कमाऊ हो या बेकमाऊ। उसका तो एक भी पूत नहीं रहा। सब पेड़ उखड़कर मुर्दे की तरह तैर रहे हैं।"- सरजूम ने मन ही मन में सोचा और सोचते-सोचते वह बिल्कुल पागल-सा होने लगा। एक बार तो उसने अपने को ढांढस भी देने की कोशिश की- "अरे इस बाढ़ और वर्षा में एक मेरा ही तो नहीं सभी के नसीब गले हैं।" लेकिन इससे उसका चित्त स्थिर न रह सका।

कल जब बाढ़ उतर जाएगी और इसी जगह पर महाजन खड़ा होकर उससे

कर्जे की माँग करेगा, तो वह कहाँ से देगा। सरजू जानता है कि महाजन एक नहीं मानेगा, एकदम कठोर कलेजे का है, मुर्दा बेचकर सूद लेने वाला। "हो सकता है इस वर्षा और बाढ़ में महाजन दब कर मर गया हो"- यह सोचते ही एक क्षण के लिए उसका चेहरा एकदम खिल-सा गया था पर दूसरे ही क्षण मुरझा भी गया था, यह आते ही कि महाजन तो पटना गया हुआ है।

सरजू एकबारगी ही जोर-जोर से बच्चे की तरह बिलख पड़ा, लेकिन बाढ़ के उस शोर और जल प्रवाह में उसके रोने और आँसू का कुछ भी ठौर-ठिकाना कहाँ था।